सुभ षि - ौरभ

सकलनकर्त्ता

आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज

के

अन्तेवासी-श्री हीरामुनि

सम्पादक

श्री शशिकान्तझा शास्त्री"

प्रकाशक

सम्यग्ज्ञान प्रचारक

जयपुर

वीर स० २५०३
विक्रम स० २०३८
ईस्वी-१९७७

•

प्रथम सस्करण
१०००

•

मूल्य
३ रुपये

•

मुद्रक
शर्मा प्रिन्टर्स,
पुरानी मण्डी, अजमेर

प्रकाशकीय

"सुभाषित-सौरभ" नाम का यह सुभाषित संग्रह अपने प्रेमी पाठकों की सेवा मे प्रस्तुत करते हुए, परम प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। सुभाषित का सुप्रभाव जिस रूप मे पाठको पर पडता है, यह किसी से अज्ञात नही है। इसके सम्यक् स्वाध्याय से जीवन को जाग्रत और प्रबुद्ध बनाया जा सकता है।

पूज्यगुरुदेव आचार्य श्री हस्तीमलजी म० के सुशिष्य श्री हीरामुनिजी म० जैन समाज के लोगो से अनजान एव अज्ञात नही है। उन्हे नित्य के अपने प्रवचन मे सुभाषित का, सूक्तियो के उद्धरण देने का अच्छा अभ्यास है। इस सन्दर्भ मे वे जहा तहा से सुभापितो का संग्रह करते रहते है। खासकर आचार्य श्री के प्रेरक सुभापितो को अपनाने मे आप क्षण पल की भी देर नही करते। यह पुस्तक उसी संग्रह वृत्ति की एक अनमोल देन है।

इस वर्ष पूज्य जैनाचार्य प्रात स्मरणीय श्री हस्तीमलजी म० का चतुर्मास 'महावीर भवन लाखन कोठडी" अजमेर मे हुआ। चतुर्मास की पावन स्मृति को अटल और अमिट बनाने के लिए "फर्म भीवराज रेखराज" फैन्सी वस्त्र विक्रेता "नया बाजार अजमेर" के मालिक श्री रावतमलजी भवरलालजी कोठारी तथा श्री अमरचन्दजी अनिलकुमारजी दुरेडिया ने इसके प्रकाशन का कुल व्यय भार अपने ऊपर उठाकर 'सम्यग्ज्ञान प्रचारक मडल" जयपुर के प्रकाशन उत्साह को अत्यधिक आगे बढाया है। इसके लिए मडल आप सबका आभारी है तथा विश्वास करता है कि समाज के अन्य श्रीमान् भी आपके इस पुण्य कार्य का अनुसरण करेंगे।

आशा ही नही परम विश्वास भी है कि प्रेमी पाठक इस पुस्तक के स्वाध्याय से आत्मा को समुन्नत एव ज्ञान दर्शन चारित्र मे परिपूर्ण कर इस सग्रह की भावना को सफल बनायेगे। इसी अमर कामना के साथ

श्री सोहन नाथ मोदी
अध्यक्ष

श्री चन्द्रराज सिघवी
मत्री

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल
बापू बाजार
जयपुर—३०२००३

सम्पादकीय

प्रस्तुत 'सुभाषित–सौरभ'' सुभाषितो, सूक्तियो का एक लघु सग्रह है। इसमे सस्कृत, प्राकृत और हिन्दी के कतिपय सुभाषित एव सूक्तियो का सकलन है। इसके सकलयिता आचार्य श्री हस्तीमल जी म के अन्तेवामी श्री हीरा मुनिजी है। आप जैन सतो मे एक उदीयमान तरुण सत हैं, जो सुभाषितो—सूक्तियो के प्रति गहरी अभिरुचि रखते है।

ससार मे सरस-मधुर-वाणी का अनुपम महत्त्व है अनमोल प्रभाव है। उसमे भी सुभाषित का–सूक्ति का तो कहना ही क्या ? सुवचनो मे तो वह शक्ति है, बल है जो अधीर भाव से रोतो को हसा दे ढाढस बधा दे और राग रजित जन मन मे वैराग्य–भाव भर कर, उसे ससार से निर्मोही और निस्पृह कर दे।

वास्तव मे सुभाषित सुमन से भी बढ चढ कर है। सुमनो की सुन्दरता तथा सुरभि तो थोडे समय तक रहती है। उनमे अक्षय तत्व और अमरता नही होती। ज्योही कोमल पखुरिया मुर्झा जाती कि रूप गुण दोनो नष्ट हो जाते है। फिर तो अतीत की अतृप्त–कचोट रह रह कर मन को कचोटती रहती है। मगर सुभाषित मे वह सुरभि है गुण है, मादकता और विशेपता है, जो समय समय पर सुनने और सुनाने वाले दोनो को एक अपूर्व मस्ती मे झूम झूम जाने को मजबूर कर देती है। यह एक ऐसा रस है, जिसके आगे अनुपम सुधारस का भी कुछ मोल और महत्व नही रहता। कहा भी है– 'सुभाषित रसस्याग्रे, सुधा भीता दिवगता।'' याने सुभाषित रस के आगे डर कर सुधा स्वर्ग लोक चली गयी।

यद्यपि मुनि श्री का इस सग्रह मे अपना कृतित्व कुछ भी नही है। मगर इन सारे सुभाषितो को चयन कर, उनका अर्थ कर, एक रूप मे प्रस्तुत करना भी अपना एक विशिष्ट महत्व और व्यक्तित्व रखता है। बिखरे हुए फूल और मोतियो की जो शोभा हार या माला के रूप मे गू थे जाने पर होती है, वह पृथक् रूप मे नही। मालाकार उन विभिन्न रग और रूप वाले सुमनो को एक धागे मे गू थकर जो हार तैयार करता है– उसकी उपयोगिता, बिखरे सुमनो से बढकर

इसके प्रकाशन का व्ययभार वहन करने वाले फर्म "निराज रत्नराज फैन्सी वस्त्र विक्रेता'' तथा बाजार अजमेर के मालिक श्री रतनमलजी भवरलालजी कोठारी एवं श्री अमरचन्दजी अनिल कुमार जी दुगड़िया जो कि सत्तर वर्षो से अपने संयुक्त व्यवसाय का सफल संचालन कर रहे हैं को धन्यवाद के दो शब्द कहना अप्रासंगिक नहीं होगा। जिन्होने अपने पूज्य गुरुदेव आचार्य श्री हस्तीमल्ल जी म. के इस अजमेर चतुर्मास की पुण्य स्मृति में उनके सुयोग्य शिष्य श्री हीरामुनिजी के द्वारा संकलित इस सुभाषित सौरभ को 'प्रकाशित कर जनोपयोगी बनाया।

अन्त मे मैं श्री आनन्द मल जी चोरड़िया ''अजमेर'' को भी साधुवाद देना परम कर्तव्य समझता हूं। जिनके जराग्रस्त तन एवं युवा शक्त मन के अकथ परिश्रम के बल पर ही समय पर इसका प्रकाशन संभव हो सका। साथ ही अपने समस्त शुभेच्छु पाठकों से भी मैं इसके सम्पादन मे हुई त्रुटियो के लिए क्षमा चाहता हूं।

'महावीर भवन	सुज्ञेषु किं बहुना
अजमेर	प्रार्थी
विजयादशमी	शशिकान्त झा

वि य- ूी

॥ नम सिद्धम् ॥

मंगलाचरण

(१) नमो अरिहताण नमो सिद्धाण, नमो आयरियाण ।
नमो उवज्झायाण, नमो लोए सव्वसाहूण ॥ भग० १-१

एसो पच णमुक्कारो, सव्व पावप्पणासणो ।
मगलाण च सव्वेसिं, पढम हवइ मगल ॥

आव० मल० खण्ड—२ अ० १

अर्थ—अरिहन्तो-कामादि विकारो के विनाशक को नमस्कार, सिद्धो को नमस्कार आचार्यो को नमस्कार, उपाध्यायो को नमस्कार और लोक के सभी साधुओ को नमस्कार। इन पाच पदो को किया हुआ नमस्कार सभी पापो का नाश करने वाला और ससार के सभी मगलो मे प्रथम (मुख्य) मगल है।

(२) मगल भगवान् वीरो, मगल गौतम प्रभु ।
मगल स्थूलि भद्राद्या जैन धर्मोऽस्तु मगलम् ॥

अथ—भगवान् महावीर मगलकारी हो, गौतम गणधर मगलकारी हो स्थूलभद्रादि आचाय मगलकारी हो और जैनधम मगलकारी हो।

(५) य शैवा समुपासते शिव इति, ब्रह्मेति वेदान्तिनो ।
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाण पटव, कर्तेति नैयायिका ।।
अर्हन्नित्यथ जैन शासनरता कर्मेति मीमासका ।
सोऽय वो विदधातु वाञ्छित फल त्रैलोक्यनाथो हरि ।।

अर्थ—जिसको शिवभक्त शिव कहते हैं, वेदान्ती "ब्रह्म" मानकर बौद्ध "बुद्ध" नाम से, प्रमाण में प्रवीण नैयायिक "कर्ता" के नाम से, जैन लोग "अर्हन्" कहकर और मीमासक लोग "कर्म" मानकर उपासना करते हैं वह त्रिलोकीनाथ हरि-भगवान् तुम्हें इच्छित फल प्रदान करें।

(६) जयइ ससिपाय निम्मल—तिहुयरण वित्थिण्ण पुण्ण जस कुसुमो
उसभो केवल दसरण—, दिवायरो दिट्ठदट्ठव्वो ।।

अर्थ—चन्द्र किरण के समान निर्मल जिनका पावन यशरूपी कुसुम त्रिभुवन मे विस्तार वाला है, वे समग्र चर अचर एव रूपी अरूपी पदार्थों को देखने जानने वाले अनन्त दर्शन के सूर्य प्रभु, ऋषभदेव सदा जयवन्त है ।

(७) बावीसइ च विजिय परीसह—कसाय—विग्ध—सघाया ।
अजियाइया भवियारविन्द, रविणो जयति जिणा ।।

अर्थ—बावीसो परीषहो, सम्पूर्ण कषायो एव विघ्नो के समूहो पर पूर्ण रूप से विजय प्राप्त करने वाले एव कमलवत् भव्य जीवो के लिए सूर्य के समान (परमोत्फुल्लता प्रदान करने वाले) भगवान् अजितनाथ आदि बाईसो तीर्थंकर सदा जयवन्त हैं ।

मू० ब्राह्मी चन्दन बालिका भगवती राजीमती द्रौपदी ।
कौशल्या च मृगावती च सुलसा, सीता सुभद्रा शिवा ।
कुन्ती शीलवती नलस्यदयिता, चूला प्रभावत्यहो,
पद्मावत्यपि सुन्दरी दिनमुखे, कुर्वन्तु नो मगलम् ।।

अर्थ—ब्राह्मी चन्दनबाला, राजीमती, द्रौपदी, कौशल्या, मृगावती, सुलसा, सीता, सुभद्रा, शिवा, कुन्ती नलराजा की पत्नी दमयन्ती, पुष्पचूला, प्रभावती, पद्मावती और सुन्दरी ये सतिया हमे प्राभातिक मगल प्रदान करे ।

(८) जयइ सिद्धत्थ नरिद—विमलकुल विपुल नहयल मयको ।
महिपाल मसि महोरग महिंद महिओ महावीरो ।

— हिन्दी पद्य —

मगलमय अरिहन्त जगत-गुरु, मगलमय श्री सिद्ध प्रभु।
मगलमय मुनि, साधु तपोधन, मगलमय जिन धर्म विभु॥
मगलमय भगवान् वीर है, मगलमय गौतम स्वामी।
मगलमय श्री स्थूलभद्रादिक उत्तम जैनधर्म नामी॥

'मगलवाणी''

अनन्त नित्य चित्त के, अगम्य रम्य आदि हो,
असख्य सर्व व्यापि विष्णु, ब्रह्म हो अनादि हो।
महेश कामकेतु जोग, ईश जोग-ज्ञान हो,
अनेक एक ज्ञान रूप, शुद्ध सत मान हो॥

निर्भय-करन परम परधान, भवसमुद्र जल तारन यान।
शिव मन्दिर अघ हरन अनिंद, वन्दहु पास चरण अरविंद॥

महाराज ! शरणागत पाल । पतित उधारन दीन दयाल ॥
सुमरन करहुँ नाय निज शीश । मुझ दुख दूर करहु जगदीश ॥

सिंघासन गिरि मेरु सम, प्रभु-धुनि गर्जन घोर ।
श्याम सुतनु घन रूप लखि, नाचत भविजन मोर ॥

तीन छत्र त्रिभुवन उदित, मुक्तागण छवि देत ।
त्रिविध रूप धर मनुशशि, सेवत नखत समेत ॥

बुद्धवीर, जिन हरिहर ब्रह्मा' या उसको स्वाधीन कहो ।
भक्तिभाव मे प्रेरित हो, यह चित्त उसी मे लीन रहो ॥

"मेरी भावना"

— गद्य सूक्ति —

मगल सबको पसन्द है और अमगल को कोई भी नही चाहता ।

मगलमय प्रभु सबका मगल करें, अमगल जन मन से दूर हो ।

मगलगान के रूप मे पवित्रता से जुडा हुआ हृद्तन्त्री का तार इष्ट से जुडकर मगलमय मधुर झकार करता है ॥

अहिंसा परमोधर्मस्तथाऽहिसा परोदम ।
अहिंसा परम दान-महिंसा परम तप ।
अहिंसा परमोयज्ञ-स्तथाऽहिंसा पर फलम् ।
अहिंसा परम मित्र-महिंसा परम सुखम् ।।

अर्थ —अहिंसा परम—उत्कृष्ट धर्म है, अहिंसा परम सयम है, अहिंसा परम दान है और अहिंसा परम तप है, अहिंसा परम यज्ञ है, अहिंसा परम फल है, अहिंमा परम मित्र हे और अहिंसा परम सुख है ।

—महाभारत अनु ११६/३८-३९

अहिसा सर्वजीवानाँ, सर्वज्ञै परिभाषिता ।
इद तु मूल धर्मस्य, शेषस्तस्याहि विस्तर ।।

अर्थ —मव जीवो के लिये सर्वज्ञो के द्वारा वतायी गई अहिंसा, धर्म का मूल है और शेप जो व्रत है वे उसी के विस्तार है ।

दीर्घमायु पर रूप-मारोग्य श्लाघनीयता ।
अहिंसाया फल सर्वं किमन्यत्कामदैव सा ।।

—योगशास्त्र २/५२

अर्थ —दीर्घ आयु, श्रेष्ठ रूप, नीरोगता एव प्रशसनीयता ये सव अहिंमा के ही फल है। वस्तुत अहिंसा सभी मनोरथो को सिद्ध करने वाली कामधेनु है ।

— अहिंसा का उपदेश —

सव्वे पाणा जाव सव्वे सत्ता न हतव्वा, न अज्जावेयव्वा,
न परिघेयव्वा, न परितावेयव्वा, न उद्धवेयव्वा,
एस धम्मे धुवे नीइए सासए ।

—सूत्र कृताग श्रु २ अ १ सूत्र १५

अहिंसा परमोधर्मस्तथाऽहिंसा परोदम ।
अहिंसा परम दान-महिंसा परम तप ।
अहिंसा परमोयज्ञ-स्तथाऽहिंसा पर फलम् ।
अहिसा परम मित्र-महिंसा परम सुखम् ।।

अर्थ —अहिंसा परम—उत्कृष्ट धर्म है, अहिंसा परम सयम है, अहिंसा परम दान है और अहिंसा परम तप है, अहिंसा परम यज्ञ है, अहिंसा परम फल है, अहिंसा परम मित्र है और अहिंसा परम सुख है ।

—महाभारत अनु ११६/३८-३९

अहिंसा सर्वजीवानाँ, सर्वज्ञै परिभाषिता ।
इद तु मूल धर्मस्य, शेषस्तस्याहि विस्तर ।।

अर्थ —सब जीवो के लिये सर्वज्ञो के द्वारा बतायी गई अहिंसा, धर्म का मूल है और शेप जो व्रत है वे उसी के विस्तार है ।

दीर्घमायु पर रूप-मारोग्य श्लाघनीयता ।
अहिंसाया फल सर्वं किमन्यत्कामदेव सा ।।

—योगशास्त्र २/५२

अर्थ —दीघ आयु, श्रेष्ठ रूप, नीरोगता एव प्रशसनीयता ये सब अहिंसा के ही फल है। वस्तुत अहिंसा सभी मनोरथो को सिद्ध करने वाली कामधेनु है ।

— अहिंसा का उपदेश —

सव्वे पाणा जाव सव्वे सत्ता न हतव्वा, न अज्जावेयव्वा,
न परिघेयव्वा, न परितावेयव्वा, न उद्धवेयव्वा,
एस धम्मे धुवे नीइए सासए ।

—सूत्र कृताग श्रु २ अ १ सूत्र १५

अहिंसा प्रथमा प्रोक्ता, यस्मात् सर्वजगत् प्रिया ।
तस्मात्सर्व प्रयत्नेन, कर्तव्या सा विचक्षणैः ।।

अर्थ —जिस कारण से कि समस्त जगत की प्रिय अहिंसा है अत उसका प्रथम कथन किया गया है। इसलिए सभी प्रयत्नो से विचक्षणो के द्वारा अहिंसा का पालन करना चाहिये

यथा मम प्रिया प्राणास्तथान्यस्यापिदेहिन ।
इति मत्वा प्रयत्नेन, त्याज्य प्राणिवधो बुधैं ।।

अर्थ —जैसे प्राण मेरे प्रिय है वैसे अन्य प्राणियो के भी। यह मानकर प्रयत्न पूर्वक बुधजन को जीव वध छोड देना चाहिये।

कण्टकेनापि विद्धस्य, महती वेदना भवेत् ।
चक्रकुतासिशक्त्याद्यै विध्यमानस्य का कथा ।।

अर्थ —एक काटे से विंधे जाने पर भी घोर वेदना होती है तो फिर चक्र, भाला, शक्ति आदि द्वारा छेदने-भेदने पर न जाने कितनी होती होगी ?

मरिष्यामीति यद्दुःख, पुरुषस्येह जायते ।
शक्यते नानुमानेन, परेभ्य परिरक्षितुम् ।।

अर्थ —"मैं मरुगा" इसका जितना दुख लोगो को यहा होता है वह दुख दूसरो से रक्षा के लिये अनुमान करना भी सभव नही है।

यावन्ति पशुरोमाणि, पशुगात्रेषु भारत ।
तावद् वर्ष सहस्राणि, पच्यन्ते पशुघातका ।।

दया धर्म नदी-तीरे, सर्वे धर्मास्तृणाङकुरा ।
तस्या शोषमुपेतायां, कियत् तिष्ठन्ति ते चिरम् ।।

अर्थ —दया धर्म नदी के समान है। दूसरे सत्य आदि धर्म दया नदी के सूख जाने पर अधिक नही ठहर सकते।

सर्वे वेदा न तत्कुर्यु , सर्वेयज्ञाश्च भारत ।
सर्वे तीर्थाभिषेकाश्च, यत्कुर्यात् प्राणिनॉ दया ।।

अर्थ —जीव दया वह कार्य कर दिखाती है, जो वेद, यज्ञ एव तीर्थाभिषेक नही कर सकते।

न सा दीक्षा न सा भिक्षा, न तद्दान न तत्तप ।
न तज्ज्ञान न तद्ध्यान, दया यत्र न विद्यते ।।

अर्थ —वास्तव मे वह दीक्षा, दीक्षा नही, वह भिक्षा, भिक्षा नही, वह दान, दान नही और वह तप, तप नही तथा वह ज्ञान, ज्ञान नही और वह ध्यान, ध्यान नही जिसमे दया न हो।

यत्नादपि परक्लेशं, हर्तु या हृदि जायते ।
इच्छा भूमि सुरश्रेष्ठ, सा दया परिकीर्तिता ।।

अर्थ —यत्न से दूसरो के कष्ट को हरने की जो इच्छा हृदय मे उत्पन्न होती है हे सुरश्रेष्ठ! वही दया कही गई है।

क्रीडा भू सुकृतस्य दुष्कृतरज सहारवात्या भवो—
दन्वन्नौर्व्यसनाग्नि मेघ पटल, सकेत दूती श्रियाम् ।

— हिन्दी उर्दू पद्य —

परम धर्म श्रुति विदित अहिंसा । पर निन्दा सम अधन गिरीसा ।
पर हित सरिस धर्म नहिं भाई । पर पीडा सम् नहिं अधमाई ॥

"रामचरित मानस"

अगर तेरे दिल मे दया ही नही, समझ लो तुझे दिल मिला ही नही ।

करूँ मैं दुश्मनी किससे, नही दुश्मन कोई मेरा ।
मुहब्बत ने जगह दिल मे, नही छोडी अदावत की ।

— गद्य सूक्ति —

दयावान् वह है जो पशुओ के प्रति भी दयावान् हो ।

"वाइविल"

जहा पशु मरते हो, वहा नमाज मत पढो ।

"हजरत मुहम्मद"

रहम करने वाले पर रहमान रहम करता है । तुम जमीन वालो पर रहम करोगे तो तुम पर आसमान वाला रहम करेगा ।

तुम अपने पेट को पशु पक्षियो की कब्र मत बनाओ ।
भले शराव पी, कुरान को जला डाल, कावे मे
आग लगा दे, परन्तु कभी किसी प्राणी को दुख न दे ।
ये काम वुरे हैं, पर हिंसा इन सवसे भी वहुत वुरी है ।

जरथुस्त धर्म मे पशु का वध—मास भक्षण और शिकार करना भी मना है ।

हुसिया शास्त्र के आठवें अध्याय की १५वी आयत मे हिंसको के विरोध मे लिखा है कि—

३

सत्य

सत्य धर्मस्तपो योग, सत्य ब्रह्म सनातनम् ।
सत्य यज्ञ पर प्रोक्त, सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् ।। १ ।।
"महाभारत"

सत्य धर्म है, तप है, योग है, सनातन ब्रह्म है और उत्कृष्ट यज्ञ है। सब कुछ सत्य पर टिका हुआ है।

सत्येन धार्यते पृथ्वी, सत्येन तपते रवि ।
सत्येन वाति वायुश्च, सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् ।। २ ।।
'चाणक्य नीति'

सत्य से ही पृथ्वी स्थिर है, सूर्य तपता है और हवा चलती है। सब कुछ सत्य मे ही प्रतिष्ठित है।

तस्याग्निर्जलमर्णव स्थलमरिर्मित्र सुरा किन्नरा ।
कान्तार नगर गिरिर्गृहमहिमाल्य मृगारिर्मृग, ।।
पाताल बिलमस्त्रमुत्पलदल, व्याघ्र शृगालो विष ।
पीयूष विषम समच वचन, सत्याञ्चित वक्तिय ।। ३ ।।

जो सत्य वचन बोलता है, उसके लिए अग्नि जलकी तरह, समुद्र स्थल की तरह, शत्रु मित्रवत्, देव (किंकर) सेवकवत्, वन नगरवत्, पहाड गृहवत्, सर्प माल्यवत्, सिंह मृगवत्, पाताल बिलवत्, अस्त्र कमलपत्र वत्, व्याघ्र शृगाल वत् विष अमृत वत् और विषम समवत् हो जाता है।

सत्य

सत्य धर्मस्तपो योग, सत्य ब्रह्म सनातनम् ।
सत्य यज्ञ पर प्रोक्त, सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् ॥ १ ॥
"महाभारत"

मत्य धर्म है, तप है, योग है, सनातन ब्रह्म है और उत्कृष्ट यज्ञ है। सब कुछ सत्य पर टिका हुआ है।

सत्येन धार्यते पृथ्वी, सत्येन तपते रवि ।
सत्येन वाति वायुश्च, सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् ॥ २ ॥
'चाणक्य नीति'

मत्य से ही पृथ्वी स्थिर है, सूर्य तपता है और हवा चलती है। सब कुछ सत्य मे ही प्रतिष्ठित है।

तस्याग्निर्जलमर्णव स्थलमरिर्मित्र सुरा किन्नरा ।
कान्तार नगर गिरिर्गृहमहिमाल्य मृगारिर्मृग, ॥
पाताल बिलमस्त्रमुत्पलदल, व्याघ्र शृगालो विष ।
पीयूष विषम समच वचन, सत्याञ्चित वक्तिय ॥ ३ ॥

जो मत्य वचन वोलता है, उसके लिए अग्नि जलकी तरह, ममुद्र स्थल की तरह, शत्रु मित्रवत्, देव (किंकर) सेवकवत्, वन नगरवत्, पहाड गृहवत्, नप माल्यवत्, सिंह मृगवत्, पाताल बिलवत्, अस्त्र कमलपत्र वत्, व्याघ्र शृगाल वत् विप अमृत वत् और विमम समवत् हो जाता है।

अग्निना सिच्यमानोऽपि, वृक्षो वृद्धि न चाप्नुयात् ।
तथा सत्य विना धर्म , पुष्टि नायाति कर्हिचित् ।।

जैसे आग से सींचे जाने पर वृक्ष नही बढ पाता वैसे ही सत्य के बिना धर्म भी कही पुष्ट नहीं बन पाता ।

सत्य ब्रूयात् प्रिय ब्रूयात्, न ब्रूयात् सत्यमप्रियम् ।
प्रिय तु नानृत ब्रूयादेष धर्म सनातन ।।

मनुष्य को चाहिये कि वह सत्य बोले, प्रिय बोले अप्रिय सत्य न बोले और असत्य जो प्रिय भी न बोले यह सनातन धर्म है ।

आत्मार्थे वा परार्थे वा, पुत्रार्थे वापि मानवा ।
अनृत ये न भाषन्ते, ते बुधा स्वर्गगामिन ।।

जो मनुष्य अपने लिए या दूसरे के लिए अथवा पुत्र के लिए भी झूठ नहीं बोलता वह बुद्धिमान स्वर्गगामी होता है ।

सत्य जगस्य मूल, सत्य विश्वास कारण परम ।
सत्य स्वर्गद्वार, सत्य सिद्धेः सोपान ।। इस तरह अनिवार

सतमत छोडो ठाकरा, सत छोड्या पत जाय।
सत की वाधी लक्ष्मी, फेर मिलेगी श्राय॥
सत्य मूल सब सुकृत सुहाये। वेद पुराण विदित मनुगाये।
धर्म न दूजा सत्य समाना। श्रागम निगम पुराण वखाना।

"तुलसी"

श्रव रहीम मुश्किल पडी गाढे दोऊ काम।
साचे से तो जग नही, झूठे मिले न राम॥
साच कहू तो लाठी मारे, झूठे जग पतियाही।
गलिया तो गोरस फिरे, मदिरा वैठि विकाई॥

"तुलसी"

कौन सुने किससे कहे, सच्चे दिली विचार।
श्राज श्रहो वहरा हुश्रा, सारा ही ससार।
साच कहो हो जायगी, कहते ही तकरार।
श्राज हर जगह जुड रहा, हा हा का दरवार॥

— सूक्ति —

सत्यवादिता ही सवसे ऊची प्रामाणिकता हैं।
जहा सत्य नही वहा भय है, श्रशान्ति है।
सत्य से जीवन मे श्रनुपम निखार श्राता है।
कष्ट झेलकर भी सत्य विमुख नही वनें।
सत्य की नाव पहाड पर चलती है, इस पुरानी कहावत मे कम रहस्य नही है।

———— —

एकस्यैक क्षण दु ख - मार्यमाणस्य जायते ।
सपुत्र पौत्रस्य, पुनर्यावज्जीव हृते धने ।।
"योगशस्त्र"

अर्थ—अकेले मारे जाने वाले जीव को केवल क्षण भर का ही दु ख होता है । किन्तु जिसकी सम्पत्ति चोरी चली जाती है, उसे और उसके पुत्र पौत्रो को जीवन भरके लिए दु ख होता है ।

विशन्ति नरक घोर, दु ख ज्वाल करालितम् ।
अमुत्र नियत मूढा, प्राणिनश्चौर्यचर्विता ।।
"ज्ञानार्णव"

अर्थ – चोरी करने वाले मूढ परलोक मे दु ख ज्वाला से भयानक घोर नरक मे प्रवेश करते है ।

चौर श्चौरापको मन्त्री, भेदक काणक क्रयी ।
अन्नद स्थानदश्चैव, चौर सप्तविध स्मृत ।।

अर्थ—चोर के सात भेद है, चोरी करने वाला, कराने वाला, सलाह करने वाला, भेद बताने वाला, माल लेने वाला, चोर को अन्न देने वाला तथा स्थान देने वाला ।

अतुट्ठिदोसेण दुही परस्स लोभाविले आययइ अदत्त ।।
'उत्तराध्ययन,

अर्थ—असन्तोप के दोप से दु खी लोभ से कलुपित होकर चोरी करता है ।

तस्करस्य कुतो धम — चोर के पास धर्म कहा ?
चौराणामनृत वलम् — चोरो को झूठ का वल होता है ।

ब्रह्मचर्य

कायेन मनसा वाचा, सर्वावस्थासु सर्वदा।
सर्वत्र मैथुन त्यागो, ब्रह्मचर्य प्रचक्षते ।।

अर्थ—शरीर मन और वचन से सभी अवस्थाओ मे सर्वदा एव सर्वत्र मैथुन त्याग को ब्रह्मचर्य कहते हैं।

ससार तरणे तद्वत्, ब्रह्मचर्यं प्रकीर्तितम्।
समुद्र तरणे यद्वदुपायो नौ प्रकीर्तिता ।।

अर्थ—समुद्र पार करने के लिये जैसे नाव को उपाय बताया गया है, वैसे ससार पार करने के वास्ते ब्रह्मचर्य कहा गया है।

वह्निस्तस्य जलायते जल निधि कुल्यायते तत्क्षणात्।
मेरु स्वल्प शिलायते मृगपति सद्य कुरगायते ।।
व्यालो माल्य गुणायते विषरस पीयूष वर्षायते।
यस्याङ्गेऽखिल लोक वल्लभतम शील समुन्मीलति ।।

अर्थ—जिसके शरीर मे समस्त लोक का शील विराजित है, उसके लिये अग्नि जल की तरह है, समुद्र नाले की तरह मेरु छोटे पत्थर की तरह, सिह हिरण की तरह सर्प माल्य गुण की तरह और विष अमृत की तरह हो जाते हैं

तोयत्यग्निरपि स्रजत्यहिरपि, व्याघ्रोऽपि सारङ्गति ।
व्यालोऽप्यश्वति पर्वतोऽप्युपलति, क्ष्वेडोऽपि पीयूषति ।
विघ्नोऽप्युत्सवति प्रियत्यरिरपि, क्रीडा तडागत्यपां ।
नाथोऽपि स्वगृहत्यटव्यपि नृणा शील प्रभावाद् ध्रुवम् ।

अर्थ—अग्नि जलबन, सर्प पुष्पमालाबन, व्याघ्र मृगबन, मस्तगज अश्वबन, पर्वत पत्थर-खण्डबन, जहर अमृत बन, विघ्न उत्सवबन, शत्रु मित्रबन, समुद्र क्रीडा सरोवरबन और अटवी घर बन शील के प्रभाव से हो जाते हैं।

ऐश्वर्यस्य विभूषण सुजनता शौर्यस्य वाक् सयम ।
ज्ञानस्योपशम श्रुतस्य विनयो, वित्तस्य पात्र व्यय ।।
अक्रोधस्तपस क्षमा प्रभवितुधर्मस्य निर्व्याजता ।
सर्वेषामपि सर्वकारणमिद, शील पर भूषणम् ।।

अर्थ—ऐश्वर्य का विभूषण सुजनता शौर्य का वचन सयम, ज्ञान का उपशम, श्रुत का विनय वित्तका पात्र मे व्यय तप का अक्रोध, प्रभाव के लिए क्षमा धर्म की निर्व्याजना (निश्छलता), इन सबके ये सब कारण हैं किन्तु शील सबमें बढकर भूषण है।

व्रताना ब्रह्मचर्य हि निर्दिष्ट गुरुक व्रतम् ।
एकतश्चतुरो वेदा ब्रह्मचर्य वा एकत ।।

अर्थ—व्रतो मे ब्रह्मचय महान् व्रत कहा गया है। एक ओर चारो वेद है और एक ओर ब्रह्मचय ।

विदेशेषु धन विद्या, व्यसनेषु धन मति ।
परलोके धन धर्म विद्या, शील सर्वत्र वै धनम् ।।

अर्थ—विदेश मे विद्या धन है और व्यसन मे मतिधन, परलोक मे धर्म धन किन्तु शील सर्वत्र धन है।

मात्रा स्वस्रा दुहित्रावा, न विविक्तासनो भवेत् ।
वलवानिन्द्रिय ग्रामो, विद्वासमपकर्षति ।। मनु

अर्थ—ब्रह्मचारी को माता, बहिन और पुत्री के साथ भी एकान्त स्थान मे नही बैठना चाहिये । क्योकि इन्द्रियो का समूह बलवान् है, वह विद्वानो को भी खीच लेता है ।

सुख शय्या नव वस्त्र, ताम्बूल स्नान मज्जने ।
दन्त काष्ठ सुगन्धच, ब्रह्मचर्यस्य दूषणम् ।।

अर्थ—सुखकारी शय्या नयावस्त्र, ताम्बूल, स्नान, मजन दातोन और सुगन्धित द्रव्य ये ब्रह्मचर्य के दूषण है ।

मलस्नान सुगन्धाद्यै , स्नान दन्त विशोधनम् ।
न कुर्यात् ब्रह्मचारी च, तपस्वी विधवा तथा ।।

अर्थ—मलस्नान– मैल उतारना, सुगन्धित द्रव्यो से नहाना, दातोन–मजन आदि से दातो को साफ करना, ब्रह्मचारी को तपस्वी को और विधवा को ये काम नही करना चाहिये ।

जहा किपाग फलाण, परिणामो न सु दरो ।
एव भुत्ताण भोगाण, परिणामो न सु दरो ।।

अर्थ—जैसे किपाक वृक्ष के फलो का परिणाम सुन्दर नही है, वैसे भोगे हुए भोगो का परिणाम भी सुन्दर नही है ।

तृषा शुष्यत्यास्ये, पिवति सलिल स्वादु सुरभि ।
क्षुधार्त सञ्शालीन्, कवलयति मासाज्यकलितान् ।।
प्रदीप्ते कामाग्नौ सुदृढतमाश्लिष्यति वधू ।
प्रतीकार व्याधे सुखमिति विपर्यस्यति जन । भर्तृहरि

अर्थ—जैसे तृषा से गला सूखने पर मनुष्य स्वादिष्ट एवं सुगन्धित जल पीता है और भूख से व्याकुल होने पर घृतादि से युक्त अच्छे चावल का भात खाता एवं कामाग्नि के प्रदीप्त होने पर वधू को सुदृढ़ आलिंगन करता है। वास्तव में जल भोजन और स्त्री ये एक एक रोग की औषधियां हैं। लेकिन लोगों ने अज्ञानवश उलटा अर्थ करके इन्हें सुख रूप मान रखा है।

जेण सुद्धचरिएण भवइ सुवभणो सुसमणो सुसाहु ।
स इसी मुणी स सजए, स एव भिक्खू जे सुद्धचरइ वभचेर ।।

प्रश्न व्याकरण

अर्थ—जिस शुद्धाचरण से व्यक्ति सुब्राह्मण, सुश्रमण, सुसाधु होता है। वह ऋषि, वह मुनि, वह सयत और वही भिक्षु है जो शुद्ध भाव से ब्रह्मचर्य का पालन करता है।

ब्रह्मचर्येण तपसा, राजा राष्ट्र विरक्षति ।
आचार्यो ब्रह्मचर्येण, ब्रह्मचारिणमिच्छते ।।

"अथर्ववेद"

अर्थ—ब्रह्मचर्य रूप तप से राजा राष्ट्र की विशेष रक्षा करता है, आचार्य ब्रह्मचर्य के कारण से ही ब्रह्मचारी की इच्छा करता है।

नाल्प सत्वै र्न नि शीलै, र्न दीनैर्नाक्ष निर्जितै ।
स्वप्नेऽपि चरितु शक्य, ब्रह्मचर्यमिद नरै ।।

"ज्ञानार्णव"

अर्थ—अल्प वलवाले, शील रहित दीन और इन्द्रियो के द्वारा जीते गए लोग, इस ब्रह्मचर्य को स्वप्न मे भी नही पाल सकते ।

रसाद् रक ततो मास, मासाद् मेद प्रजायते ।
मेदसोऽस्थि ततो मज्जा, मज्जात शुक्र सभव ॥
"शाङ्गधर"

अर्थ—रस से रक्त, रक्त से मास, मास से चर्बी, चर्बी से हड्डी, हड्डी से मज्जा (हड्डी का सार) एव मज्जा से वीर्य की उत्पत्ति होती है ।

— पद्य —

वीर्य आतम-विद्या प्रवर, अर्थ ब्रह्मरो जोय ।
रक्षण चिन्तन-अध्ययन, अर्थ चर्यरा होय ॥
प्रथम अर्थ ब्रह्मचर्य रो, वीर्य सुरक्षा जाण ।
अपर आतम चिन्तन तदनु, विद्याध्ययण पिछाण ॥
पतिव्रता फाटा लता धन्य वाको दीदार ।
कहो वन्धु किस काम का, वेश्या का शृगार ॥
निरखी ने नव यौवना लेश न विषय निदान ।
गणे काठनी पूतली ते भगवान समान ॥

सूक्ति

वस्तुत वीर्य का नाश जीवन का विनाश है ।
ब्रह्मचारी का तेज सूर्य के तेज से भी प्रखर एव चन्द्र से भी अधिक आह्लादक होता है ।

६

परिग्रह

"मूर्च्छा परिग्रह" मूर्च्छा-आसक्ति ही परिग्रह है ।

द्वेषस्यायतन धृतेरपचय क्षान्तेः प्रतीपो विधि
र्व्याक्षेपस्य सुहृन्मदस्य भवन ध्यानस्य कष्टोरिपु ।
दु खस्य प्रभव सुखस्य निधन पापस्यवासो निज ,
प्राज्ञस्यापि परिग्रहो ग्रह इव, क्लेशाय नाशायच ।

अर्थ—परिग्रह द्वेष का घर है, धैर्य का नाशक है, क्षमा का शत्रु है, विक्षेप आक्षेप का मित्र है, मदका भवन है, ध्यान का कष्टदायक शत्रु है, दु ख को उत्पन्न करने वाला है, सुख के हेतु मरण है और पाप का अपना निवास है । इस तरह बुद्धिमानो के लिए भी यह ग्रह की तरह कष्ट तथा नाश के लिए है ।

परिग्गहे चेव होति नियमा, सल्ला दण्डाय गारवा य ।
कसाया सन्नाय कामगुण-अण्हया य इदिय लेसाओ ।।

"प्र० व्याकरण"

अर्थ—मायादि-शल्य, दण्ड गारव, कषाय, सज्ञा, शब्दादि गुण रूप आस्रव, असवृत्त-इन्द्रिया और अप्रशस्त लेश्याये ये सभी परिग्रह होने पर अवश्य होते है ।

किं न क्लेशकर परिग्रह नदी-पूर प्रवृद्धि गत ।
"सिन्दूर प्रकरण"

बढा हुआ परिग्रह नदी का प्रवाह क्या क्या क्लेश-दु ख नही करता ?

चित्तमतमचित्त वा, परिगिज्झ किसामवि ।
अन्न वा अणुजाणाई, एव दुक्खाण मुच्चई ।।
"सूत्रकृताग"

अर्थ—जो आदमी सजीव या निर्जीव, थोडी या अधिक वस्तु को परिग्रह की बुद्धि से रखता है अथवा परको रखने की आज्ञा देता हे, वह दु ख से छुटकारा नही पाता ।

सूक्ति

ससार मे फैली इन समस्त विपमताओ का मूल परिग्रह ही है । परिग्रह के चलते ही यह ससार इस रूप मे दु खी है ।

लोम हर्पक युद्धो का कारण परिग्रह रहा है और आगे भी परिग्रह ही रोंगटे खडे करने वाले युद्ध का कारण बनेगा ।

परिग्रह की प्यास कभी नही बुझती और न भूख ही मिटती है । परिग्रह की भावना रहित मन शुद्ध शान्त और निर्मल होता है ।

बन पडे जहाँ तक परिग्रह का मोह छोड दे ।

सन्तोष (निस्पृहता)

भू शय्या भैक्ष्यमशन, जीर्ण वासो वन गृहम् ।
तथाऽपि नि स्पृहस्याहो चक्रिणोऽप्यधिक सुखम् ॥
"ज्ञानसार"

अर्थ—चाहे भूमि का शयन हो, भिक्षा का भोजन हो, पुराने वस्त्र हो और वन मे घर हो, फिर भी नि स्पृह—[illegible] मनुष्य को चक्रवर्ती से भी अधिक सुख है ।

सतोषामृत तृप्ताना, यत्सुख शान्त चेतसाम् ।
कुतस्तद् धन लुब्धाना, मितश्चेतश्च धावताम् ॥

अर्थ—सन्तोष रूप अमृत से तृप्त, शान्त हृदय पुरुषो के पास जो सुख है, वह इधर उधर भटकते हुए धन के लोभी पुरुषो के पास कहा ?

सन्तोषस्त्रिषु कर्तव्य स्वदारे भोजने धने ।

अर्थ—अपनी पत्नी, भोजन और धन मे सतोष करना चाहिये ।

क्रोधो वैवस्वतो राजा, तृष्णा वैतरणी नदी ।
विद्या कामदुहा धेनु, सतोषो नन्दन वनम् ॥
"चाणक्यनीति"

अर्थ—क्रोध यमराज है, तृष्णा वैतरणी नदी है, विद्या कामधेनु है और सन्तोष नन्दनवन है ।

पु सोऽय ससृते हेंतु-रसन्तोषोऽर्थकामयो ।
यदृच्छयोपपन्नेन, सन्तोषो मुक्तये स्मृत ।।
भागवत

अर्थ—धन एव काम का असन्तोप मनुष्य को ससार मे भटकाता है। अनायाम मिले पर सन्तुष्ट रहना मुक्ति का हेतु है।

मनसि च परितुष्टे, को ऽ र्थवान् को दरिद्रः ।

अर्थ—मन मे सतोप के आने पर धनवान् कौन और दरिद्र कौन ? ।

सर्वा सम्पत्तयस्तस्य,' सन्तुष्ट यस्य मानसम् ।
उपानद् गूढ पादस्य, ननु चर्मावृतैव भू ।
'हितोपदेश"

जिसका मन सन्तुष्ट है, सभी सम्पत्तिया उसके पास हैं, जिसके पैरो मे जूते है, उसके लिए सारी वसुधा चमडे से ढँकी हुई है।

— हिन्दी —

कनायत से कर जिन्दगानी वमर।
के छोटी-सी चिडिया का छोटामा घर ।।
विनु ततोप न "काम" नसाही। काम अछत सपनेहु सुख नाही ।।
उदित अगस्त्य पथजल सोखा। जिन लोमहिं सोखहि मतोखा ।।
'रामचरित मानम"

गोधन, गजधन, वाजिधन, और रतन धन खान।
जव आवे सन्तोपधन, सव धन धूल ममान ।।
ईस भजन सारथी सुजाना । विरति चर्म सतोप कृपाना ।।

— सूक्ति —

सतोप मनुष्य को महान् वनाता है।
जिसके पास सतोष नही है उसे कुछ भी नही है।

माया

असूनृतस्य जननी, परशु शील शाखिन ।
जन्म भूमिरविद्याना, माया दुर्गति कारणम् ।।

अथ—मिथ्या की जननी, शीलद्रुम के वास्ते परशु-कुल्हाड़ी अविद्याओं की
जन्म भूमि माया, दुर्गति का कारण है ।

तिर्यग् जाते पर बीजमपवर्ग पुरार्गला ।
विश्वास द्रुम दावाग्नि, माया हेया मनीषिभि ।।

अर्थ—तियग् जाति दिलाने के हेतु परम बीज रूप और मोक्षपुरी के वास्ते
अर्गला रूप, विश्वास वृक्ष के जलाने के लिए दावाग्नि की तरह,
यह माया बुद्धिमानो के द्वारा छोडने योग्य है ।

पूर्वं चिन्ता प्रयोगस्य समये जायते भय ।
पश्चात्तापो विपाकेच, मायाया अनृतस्य च ।।

अर्थ--माया और असत्य प्रयोग के पूर्व चिन्ता, और प्रयोग के समय भय
तथा विपाक के काल मे पश्चात्ताप होता है ।

जे इह मायाइ मिज्जइ, आगतागब्भायणतसो ।। सूत्रकृताग

अर्थ—मास खमण की तपस्या करने वाला भी जो यहा माया मे उलझ
जाता है, वह अनन्तवार गर्भ-दुखो का भागी बनाता है ।

"माया गइ पडिग्घाम्रो"

अर्थ—माया शुभ गति को नष्ट करती है।

माया करण्डी, नरकस्य हुण्डी, तपो विखण्डी सुकृतस्य भण्डी

"शुक बोध"

अर्थ—माया नरक की पिटारी है, तप को तोडने वाली हैं, और धर्म को वदनाम करने वाली है।

दुर्भाग्य जननी माया, माया दुर्गति कारणम् ।।

अर्थ—माया दुर्भाग्य की जननी तथा दुर्गति का कारण है।

— हिन्दी पद्य —

फेर न ह्वै है कपट सो, जो कीजे व्यवहार।
जैसे हाडी काठ की, चढे न दूजी वार ।।
तन उजला मन सावला, वगुला कपटी भेख।
या सू तू कागा भला, वाहर अन्दर एक ।।

— सूक्ति —

माया करने वालो से सवका अहित होता है।
माया के चलते स्व पर दोनो को दु ख देखना पडता है।
मायावी का विश्वास उठ जाता है।
वन पडे जहाँ तक हृदय पर माया का पर्दा नही डालें।

———

६

सरलता (आर्जव)

सर्व तीर्थेषु वा स्नानं सर्व भूतेषु चार्जवम् ।
उभे त्वेते समे स्यातामार्जव वा विशिष्यते ।। 'विदुर"

अर्थ—संसार के सभी तीर्थों मे स्नान करना और समस्त प्राणियो के साथ सरलता का व्यवहार करना ये दोनो एक समान है अथवा सरलता तीर्थ-स्नान से भी बढकर है ।

माया विजएण अज्जव जणयइ । "उत्तरा०"

अर्थ—माया पर विजय मिलाने से सरलता प्राप्त होती है ।

नात्यन्त सरलैर्भाव्य, गत्वा पश्य वनस्थलीम् ।
छिद्यन्ते सरलास्तत्र, कुब्जास्तिष्ठन्ति पादपा ।।
चाणक्य नीति

अर्थ—अति सरलता भी ठीक नही होती। वनस्थली के सरल वृक्ष क जाते है पर टेढे मेढे वृक्ष नही कटते ।

अज्जवयाएण काउज्जुयय भावज्जुयय भासुज्जुयय
अविसवायण जणयइ । "उत्तराध्ययन"

अर्थ—सरलता से जीव शरीर मन एव भाषा मे अटेढापन (अवक्रता) तथ अविसवादन-अविरूद्धभाव को उत्पन्न करता है ।

सरलगति सरलमति, सरलाशय सरलशील सपन्न ।
मर्व पश्यति मरल, सरल सरलेन भावेन ।।

अर्थ—सरल व्यक्ति सव वस्तु सरल भाव से देखता है । उसकी गति, मति भावना एव ग्राचरण सव सरल होते हैं,

— पद्य —

विना सरलता सत्य नही, सत विन ना विश्वास ।
विन श्रद्धा नही एकता, विन एका गणनाश ।।
चन्दन वालक की तरह, रख हरदम दिल साफ ।
निष्प्रपच वन और सव, तेरे दुर्गण माफ ।।

— सूक्ति —

मरलता एक ऐमा गुण है, जिम पर सवका सहज विश्वाम हो जाता है।

मरल व्यक्ति से कभी किसी व्यक्ति को धोखा नही होता ।

यदि ग्राप मे मरलता है तो निस्सन्देह ग्रापका व्यक्तित्व लोक प्रिय रहेगा ।

प्राणी मात्र पर मरल दृष्टि रक्खें ।

हृदय में जव तक सरलता की सरिता लहराती है तव तक कपाय का ताप आपको कुछ भी नही विगाड सकता ।

———

क्षमा

नरस्य भूषण रूप, रूपस्याभूषण गुण ।
गुणस्य भूषण ज्ञान, ज्ञानस्याभूषण क्षमा ।।

"क्षेमेन्द्र"

अर्थ—नर का भूषण रूप, रूप का भूषण गुण, गुण का भूषण ज्ञान और ज्ञान का भूषण क्षमा है।

क्षमाधर्म क्षमायज्ञ, क्षमा वेदा क्षमा श्रुतम् ।
य एतदेव जानाति, स सर्व क्षन्तुमर्हति ।।

"महाभारत"

अर्थ—क्षमा ही धर्म है और क्षमा ही यज्ञ, क्षमा ही वेद और श्रुत-शास्त्र है। जो इसको जानता है, वह सब कुछ क्षमा करने मे योग्य है।

क्षमा बलमशक्ताना शक्ताना भूषण क्षमा ।
क्षमा वशी कृतिर्लोके, क्षमया किं न सिद्ध्यति ।।

अर्थ—अशक्त-बलहीनो के लिए क्षमा बल है और समर्थो के लिए क्षमा भूषण है। क्षमा से लोक वश मे होते है, इस तरह क्षमा से क्या सिद्ध नही होता है ?

क्षमा शस्त्र करे यस्य, दुर्जन किं करिष्यति ।
अतृणे पतितो वह्नि, स्वयमेवोपशाम्यति ।।

"विदुर नीति"

अर्थ—जिसके हाथ मे क्षमारूपी शस्त्र है उसका दुर्जन क्या कर सकेगा ? तृण-घास रहित स्थान मे पडी हुई अग्नि अपने आप शान्त हो जाती है।

उपकारापकाराभ्या, विपाकाद् वचनादयथा ।
धर्मच्चिच समये क्षन्ति , पञ्चधा हि प्रकीर्तिता ।।

अर्थ—क्षमा पाच प्रकार की कही गयी है। उपकार के स्मरण से, अपकारी-शत्रु वनने के भय, क्रोध के परिणाम का चिन्तन, आगम वाणी का विचार तथा समयपर धार्मिक-भावना से ।

स शूर सात्विको विद्वान्, सतपस्वी जितेन्द्रिय ।
येन क्षान्त्यादि खड्गेन, क्रोध शत्रु र्निपातित ।।
"पद्मपुराण"

अर्थ—वही शूर है, वली है, विद्वान् है, तपस्वी एव जितेन्द्रिय है, जिमने क्षान्त्यादि खड्ग के द्वारा क्रोध-शत्रु को नष्ट कर दिया ।

यस्य क्षान्तिमय शस्त्र, क्रोधाग्नेरुपशामनम् ।
नित्यमेव जयस्तस्य, शत्रूणामुदय कुत ।।

अर्थ—जिमके पास क्रोधाग्नि को शान्त करने वाला क्षमा शस्त्र है, उमकी मदा जय होती है । शत्रु का वहा उदय कहा से हो मकता है ।

खामेमि सव्वे जीवे, सव्वे जीवा खमतु मे ।
मित्ती मे सव्वभूएसु, वेर मज्भ न केणइ ।।

अर्थ—मैं मभी जीवो को क्षमा करता हू और मभी जीव मुभको भी क्षमा करे । मेरी मभी जीवो के साथ मित्रता है, किसी के माथ वैरभाव नही है ।

खमावणयाएण पल्हायण भाव जणयइ । 'उत्तराध्ययन"

अर्थ— क्षमापना से प्रमन्नता के भाव उत्पन्न होते है ।

— हिन्दी पद्य —

क्षमा शोभती उम भुजग को जिमके पाम गरल हो ।
उमको क्या ? जो दन्तहीन विपरहित विनीत मरल हो ।।

११

देव या ईश्वर

सर्वज्ञो जितरागादि-दोषस्त्रैलोक्य पूजित ।
यथास्थितार्थवादी च, देवोऽर्हन् परमेश्वर ।।

"योगशास्त्र"

अर्थ—जो सर्वज्ञ है, जिन्होने रागादि दोषो को जीत लिया है, जो तीनो लोको के पूज्य है, एव यथास्थित-जो जिस रूप मे है उसको बताने वाले है, वेही वीतराग-परमेश्वर देव है ।

निरातङ्को निराकाङ्क्षो, निर्विकल्पो निरञ्जन ।
परमात्माऽक्षयोऽन्यक्षो ज्ञेयोऽनन्त गुणोऽव्यय ।।

अर्थ—जो निर्भय है, आकाक्षारहित हैं, निर्विकल्प है निरञ्जन—निर्लेप हैं, अक्षय हैं, इन्द्रियो से परे है, अनन्तगुणयुक्त है एव अव्यय है उन्हे ही परमात्मा जानना चाहिये ।

निर्ममोऽपि कृपालुस्त्व, निर्ग्रन्थोऽपि महर्द्धिक ।
तेजस्व्यपि सदा सौम्यो, धीरोऽपि भवकातरः ।।

भिद्यते हृदयग्रन्थि, छिद्यन्ते सर्व संशया ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि, तस्मिन् दृष्टे परावरे ।।

अर्थ उस विशुद्ध आत्मस्व–रूप का दर्शन होने से हृदय की गांठ खुल जाती है, समस्त संशय नष्ट हो जाते और उस आत्मा के सम्पूर्ण कर्म क्षय हो जाते है।

परमैश्वर्य युक्तत्वादात्मैव मत ईश्वर ।
सच कर्तेति निर्दोष, कर्तृवादो व्यवस्थित ।।

हरिभद्र सूरि

अर्थ—परम ऐश्वर्य से युक्त होने के कारण आत्मा ही ईश्वर है और वह कर्ता भी है। अत ईश्वर का कर्तृवाद निर्दोष रूप से व्यवस्थित हो जाता है।

ईश्वर परमात्मैव, तदुक्त व्रत सेवनात् ।
यतो मुक्तिस्ततस्तस्या ,कर्ता स्याद् गुणभावत ।
तदनासेवनादेव यत्ससारोऽपि तत्वत ।
तेन तस्यापि कर्तृत्व, कल्प्यमान न दुष्यति ।।

वस्तुत्व रत्नाकरबीज '

अर्थ—निश्चित रूप से ईश्वर परमात्मा है और उसके कहे हुए व्रत नियम का पालन करने से मुक्ति मिलती है। अत उस मुक्ति का कर्ता–दाता गुण की अपेक्षा से ईश्वर हो जाता है। ईश्वर के कहे हुए व्रतों का पालन न करने से ही, वास्तव मे प्राणी को ससार मिलता है। अत निमित्त से उस ससार का कर्ता भी ईश्वर ही है इस कल्पना मे भी दोष प्रतीत नही होता।

ईश्वर-प्रेरितो गच्छेत्, स्वर्गं वा श्वभ्रमेववा ।
अज्ञो जन्तुरनीशोय,-मात्मन सुखदु खयो ।।

'महाभारत'

अर्थ—ईश्वर को जगत्कर्ता मानने वाले कहते है कि ईश्वर की प्रेरणा से ही प्राणी स्वर्ग-नरक मे जाता है। यह अज्ञानी जीव अपने सुख दु ख उत्पन्न करने मे असमर्थ है। उनकी मान्यतानुसार ईश्वर ही सुख दु ख और जन्म मरण का देने वाला है, मगर यह बात विचारणीय है।

गीता वचन हे कि—

न कर्तृत्व न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभु ।
न कर्म फल सयोग, स्वभावोहि प्रवर्तते ।।
नाऽऽदत्ते कस्यचित् पाप, न चैव सुकृत विभु ।।
अज्ञानेनावृत ज्ञान तेन मुह्यन्ति जन्तव ।।

अर्थ—भगवान् वास्तव मे न तो प्राणियो के कर्तापन को, न कर्म को, न कर्मफल के सयोग को रचता है। इन मव कार्यो मे प्रकृति अर्थात् कर्मो का स्वभाव ही काम करता ह। जिसने जैमा कर्म किया है, उसी के स्वभावनुमार सुख-दुख आदि उसे मिलते है।

परमात्मा न तो किमी के पाप को लेता ह और न किमी के पुण्यकर्म को ही। जीवो का ज्ञान अज्ञान मे टका हुआ है, अत वे मोहित हो रहे है अर्थात् अच्छे या वुरे मभी काम परमात्मा पर मढ रहे है।

काष्ठ कल्पतरु सुमेरुरचल श्चिन्तामणि प्रस्तर ।
सूयस्तीव्रकर शशी क्षयकर क्षारो हि वारानिधि ।।

अर्हंति वदण नमसियाइ, अर्हति पूअ सक्कार ।
सिद्धि गमण च अरहा अर्हन्ता तेण उच्चति ।।

अर्थ—वीतराग अर्हत-केवली वन्दन एव नमस्कार योग्य है, पूजा एव सत्कार के योग्य है और सिद्ध गति मे जाने के योग्य है । इसीलिए वे अर्हत् कहे जाते है ।

देवागम नभोयान चामरादि विभूतय ।
मायाविष्वपि दृश्यन्ते, नातस्त्वमसि नो महान् ।।

अर्थ—भगवन् ! आपके पास देवो का आगमन होता है आपके पास नभोयान (आकाश की सवारी) है, और अष्ट महाप्रातिहार्यो मे आप सुशोभित है, केवल इसीलिए आप महान् नही है, क्योकि ये विभूतिया तो मायावी-इन्द्रजालिक मे भी देखी जाती है ।

शत विहाय भोक्तव्य, सहस्र स्नानमाचरेत् ।
लक्ष विहाय दातव्य, कोटि त्यक्त्वा हरि भजेत् ।।

अर्थ—सैकडो कार्य को छोड कर पहले भोजन करना चाहिये । हजारो छोडकर स्नान (शरीर-शुद्धि) करना चाहिये, लाख छोडकर दान

देना चाहिये और करोडो कार्य छोडकर प्रभु का स्मरण करना चाहिये ।

एके देवे सदा भक्ति-र्यदि कल्याणमिच्छसि ।
मातुलै सप्तमि युक्तं क्षुधार्त भगिनी सुत ।

अर्थ—यदि कल्याण चाहते हो तो सदा एक देव मे भक्ति रक्खो । कहावत है कि मात मामो का भानजा भूखा रह जाता है ।

ये स्त्री शस्त्राक्ष मूत्रादि रागाद्यङ्क कलङ्कि ता ।
निग्रहाऽनुग्रहपरास्ते देवा स्यु र्न तु मुक्तये ।।

अर्थ—जो स्त्री, शस्त्र-अक्ष-सूत्र आदि बाह्य एव राग-काम क्रोध मोह आदि आभ्यन्तर चिह्नो के कलुष से कलकित और कोप जन्य निग्रह (दण्ड सहार) तथा कृपा प्रमाद जन्य अनुग्रह (सुख ऐश्वर्य) करने मे तत्पर है, वे देव तो है किन्तु मुक्ति दिलाने मे समर्थ नही है ।

अपरा तीर्थंकृत सेवा तदाऽऽज्ञा पालन परम् ।
आज्ञाराद्धा विराद्धा च, शिवाय च भवाय च ।।

अर्थ—तीर्थंकर की पर्युपासना की अपेक्षा, उनकी आज्ञा का पालन करना विशिष्ट फलदायक है । उनकी आज्ञा का पालन मुक्ति प्रदान कराने वाला और आज्ञा का उल्लघन भव भ्रमण कराने वाला है ।

चतुर्विधा भजन्ते मा, जना सुकृतिनोऽर्जुन ।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी, ज्ञानी च भरतर्षभ ।।
तेषा ज्ञानी नित्ययुक्त, एक भक्ति विशिष्यते ।।

गीता

कामो नष्ट तनुर्बलिर्दितिसुतो, नित्य पशु कामगौ ।
जातिस्ते तुलयामि भो रघुपते ! कस्योपमा दीयते ॥

अर्थ - कल्पवृक्ष काष्ठ है, सुमेरु पर्वत जड है, चिन्तामणि रत्न पत्थर है, सूर्य तीक्ष्ण किरण वाला है, चन्द्र क्षय प्राप्त करने वाला है, समुद्र खारा है, कामदेव का शरीर नष्ट हो चुका है, बलि दिति (राक्षस) का पुत्र है, कामधेनु सदा पशु जाति की है। ऐसी स्थिति मे हे रघुपते ! जब मैं आपके व्यक्तित्व की तुलना करता, तो समझ नही पाता कि आपको किस किस की उपमा दूँ ?

अर्हंति वदण नमसियाइ, अर्हंति पूअ सक्कार ।
सिद्धि गमण च अरहा अर्हन्ता तेण उच्चति ॥

अर्थ—वीतराग अर्हन-केवली वन्दन एव नमस्कार योग्य है, पूजा एव सत्कार के योग्य है और सिद्ध गति मे जाने के योग्य है। इसीलिए वे अर्हत् कहे जाते है।

देवागम नभोयान चामरादि विभूतय ।
मायाविष्वपि दृश्यन्ते, नातस्त्वमसि नो महान् ॥

अर्थ—भगवन् ! आपके पास देवो का आगमन होता है आपके पास नभोयान (आकाश की सवारी) है, और अष्ट महाप्रातिहार्यो से आप सुशोभित है, केवल इसीलिए आप महान् नही है, क्योकि ये विभूतिया तो मायावी-इन्द्रजालिक मे भी देखी जाती है।

शत विहाय भोक्तव्य, सहस्र स्नानमाचरेत् ।
लक्ष विहाय दातव्य, कोटिं त्यक्त्वा हरिं भजेत् ॥

अर्थ—सैकडो काय को छोड कर पहले भोजन करना चाहिये। हजारो छोडकर स्नान (शरीर-शुद्धि) करना चाहिये, लाख छोडकर दान

देना चाहिये और करोडो कार्य छोडकर प्रभु का स्मरण करना चाहिये ।

एके देवे सदा भक्ति-र्यदि कल्याणमिच्छसि ।
मातुलै सप्तमि युक्तं क्षुधार्त भगिनी सुत ।

अर्थ—यदि कल्याण चाहते हो तो सदा एक देव मे भक्ति रक्खो । कहावत है कि सात मामो का भानजा भूखा रह जाता है ।

ये स्त्री शस्त्राक्ष सूत्रादि रागाद्यङ्क कलङ्किता ।
निग्रहाऽनुग्रहपरास्ते देवा स्यु र्न नु मुक्तये ।।

अर्थ—जो स्त्री, शस्त्र-अक्ष-सूत्र आदि वाह्य एव राग–काम क्रोध मोह आदि आभ्यन्तर चिह्नो के कलुप से कलकित और कोप जन्य निग्रह (दण्ड सहार) तथा कृपा प्रमाद जन्य अनुग्रह (सुख ऐश्वर्य) करने मे तत्पर है, वे देव तो है किन्तु मुक्ति दिलाने मे समर्थ नही हैं ।

अपरा तीर्थकृत सेवा, तदाऽऽज्ञा पालन परम् ।
आज्ञाराद्धा विराद्धा च, शिवाय च भवाय च ।।

अर्थ—तीर्थकर की पर्युपासना की अपेक्षा, उनकी आज्ञा का पालन करना विशिष्ट फलदायक है । उनकी आज्ञा का पालन मुक्ति प्रदान कराने वाला और आज्ञा का उल्लघन भव भ्रमण कराने वाला है ।

चतुर्विधा भजन्ते मा, जना सुकृतिनोऽर्जुन ।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी, ज्ञानी च भरतर्षभ ।।
तेपा ज्ञानी नित्ययुक्त, एक भक्ति विशिष्यते ।।

गीता

कबीरा दुनिया देहरे, शीश निवावण जाय।
हिरदा भीतर हरि बसे, तू ताहि सो लौ लाय॥
तुलसी खोये पाइया, परे ब्रह्म घर माहि।
यह जग बोरा हो रहा पत्थर ढूढ़ई जाहि॥
राम किसी को मारे नहीं, मारे सो नहिं राम।
आपो आप मर जायगा, कर कर खोटे काम॥

— सूक्ति —

१—सुकर्म पूवर्क जीना, सच्ची ईश्वर भक्ति है।
२—धार्मिक आस्था और आचरण ही ईश्वराराधन है।
३—ज्ञान एवं विवेक पूर्वक चलने वाला आत्मा ही परमात्मा है।
४—ईश्वर भक्त के लिए एक दृढ आलम्बन रूप है।

———

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जन शलाकया ।
चक्षुरुन्मीलित येन तस्मै श्रीगुरवे नम ।

अर्थ—अज्ञानान्धकार में अन्धे बने नर की ज्ञानाञ्जन शलाका से जिसने आँखें खोल दी, उस गुरुदेव को नमस्कार है।

महाव्रतधरा धीरा, भैक्षमात्रोपजीविन ।
सामायिकस्था धर्मोप,-देशका गुरवो मता ।

''योगशास्त्र

अर्थ—महाव्रतधारी, धैर्यवान् केवल शुद्ध भिक्षा से जीने वाले, सयम में स्थिर रहने वाले एव धर्म का उपदेश देने वाले गुरु माने गये है।

त्यक्तदारा सदाचारा, मुक्त भोगा जितेन्द्रिया ।
जायन्ते गुरवो नित्य, सर्व भूताभयप्रदा ॥

अर्थ—जो स्त्री के त्यागी, सदाचारी, भोगो से मुक्त, जितेन्द्रिय एव सब भूतो को अभय देने वाले हो, वे गुरु है।

अवद्य मुक्ते पथि य प्रवर्तते, प्रवर्तयत्यन्य जनच निस्पृह ।
स सेवितव्य स्वहितैषिणा गुरु, स्वय तरस्तारयितु क्षम परम् ।।

अर्थ—जो निर्दोष मार्ग पर चलते और विना किसी स्वार्थ के अन्य प्राणी को प्रेरित करते है। जो स्वय तिरते हुए दूसरे को तारने मे समर्थ है वैसे आत्म-हितैषी गुरु सेवा करने के योग्य है।

गुरुर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णु, गुरुर्देवो महेश्वर ।
गुरुरेव परब्रह्म, तस्मै श्री गुरवे नम ।।

अर्थ—गुरु ब्रह्म है, गुरु विष्णु है, गुरु देव है, गुरु महेश्वर है, और गुरु ही परब्रह्म स्वरूप है। अत उस गुरुदेव को नमस्कार है।

ध्यानमूल गुरोर्मूर्ति, पूजामूलगुरो पदम् ।
मन्त्रमूल गुरोर्वाक्य, मोक्षमूल गुरो कृपा ।।

अर्थ—गुरु का स्वरूप ध्यान का मूल है, गुरु का चरण पूजा का मूल है, गुरु-वाक्य समस्त मन्त्रो का मूल है और गुरु की कृपा मोक्ष का मूल है।

एकमेवाक्षर यस्तु, गुरु शिष्य प्रबोधयेत् ।
पृथिव्या नास्ति तद् द्रव्य यद्दत्वा चानृणी भवेत् ।।

"चाणक्य"

अर्थ—जो गुरु एक अक्षर भी शिष्य को सिखाता है, पृथ्वी मे वह द्रव्य नही जो देकर उससे उऋण हो।

सद्बोध विदधाति, हन्ति कुमति मिथ्यादृश बाधते ।
धत्तधर्ममति तनोति परमे सवेग निर्वेदने ।।

रागादीन् विनिहन्ति नीतिममला, पुष्णाति हन्त्युत्पथं ।
यद्वा किं न करोति सद्गुरु-मुखादभ्युद्गता भारती ॥

अर्थ—सद्गुरु के मुखारविन्द से निकली हुई वाणी का बोध उत्पन्न करती है, कुमति का नाश करती है, मिथ्यात्व को हरती है, प्रशम में बुद्धि लगाती है, परम संवेग और निर्वेद का विस्तार करती है, रागादि का समूल नाश करती है, विशुद्ध नीति का पोषण करती है और कुपथ—उन्मार्ग को विनष्ट करती है। साथ-साथ और क्या-क्या नहीं करती? अर्थात् गुरु की वाणी सब कुछ करती है।

—हिन्दी—

सच्चे सद्गुरु मिल गए कहा करे कुसंग ।
चन्दन विष व्यापे नहीं, लिपट रहे भुजंग ॥
जे सउ चन्दा उगवहिं, सूरज चढ़हि हजार ।
एते चानण होदिआं, गुरु विन घोर अंधार ॥
देव गुरु और धर्म तत्व में, गुरु चोटी में जान ।
जैसे तराजू तोल बतावे, चोटी बिना न ज्ञान ॥
चंदन चावी एक है, है फेरन में फेर ।
बन्द करे खोले वही, याने सदगुरु हेर ॥
एक तरफ भगवान् है, एक तरफ है धर्म ।
बिच में बैठा सतगुरु, दे दोया रो मर्म ॥

जिनके विमल प्रताप से, हुआ हिताहित ज्ञान ।
भक्तियुक्त गुरुदेव का, धरूं हृदय में ध्यान ॥
गुरु दीपक गुरु चाणनो, गुरु विन घोर अंधार ।
पलक न विसरूं गुरुमणी, गुरुमम प्राणाधार ॥

यह तन विष की बेलडी, गुरु अमृत की खान ।
शीश दिये यदि गुरु मिले, तो भी सस्ता जान ॥

राजा जो प्रसन्न होय गामादि बकशीश करे
सेठजी प्रसन्न होय नौकरी—बढाय दे ।
माता-पिता प्रसन्न होय, बतावे गुप्त धन,
पति जो प्रसन्न होय, जेवर गढाई दे ।
देवता प्रसन्न होत पुत्र और धन देत,
उस्ताद प्रसन्न होय, इल्म पढाई दे ।
खूबचन्द कहे गुरुदेव जा प्रसन्न होय,
जनम मरण के दुखो से छुडाई दे ॥
राजा जो कुपित होय फासी सूली कैद करे,
सेठजी कुपित होय, घर से निकाल दे ।
माता-पिता कुपित होय, धन से निराश करे,
पति जो कुपित होय, मारताड त्रास दे ।
देवता कुपित होय दुख देवे द्रव्य हरे,
उस्ताद कुपित होय पद बदमाश दे ।
खूबचन्द कहे गुरुदेव जो कुपित होय
आग, नाग, बाघ जैसे छिन्न मे विनाश दे ॥

गुरुवर ऐसा कीजिये, जैसे पूनम चन्द ।
तेज करे पण तपे नही, उपजावे आनन्द ॥
सब धरती कागज करु, लेखनी सब बनराय ।
सात समुद्र की मसि करु, गुरु गुण लिखा न जाय ॥

साधूना दशन पुण्य, तीर्यभूता हि साधव ।
काले च फलते तीर्थ, सद्य साधु समागम ॥

अर्थ—साधुओं का दशन ही पुण्य है, क्योकि साधु तीथ स्वरूप है। तीथ तो समय पर फल देता है, किन्तु साधु की सगत तो तत्काल ही फल प्रदान करती है।

महानुभावससर्ग कस्य नोन्नति कारणम् ।
गगाप्रविष्ट रथ्याम्बु, त्रिदशैरपि वन्द्यते ॥

अथ—महात्माओ का ससग किसकी उन्नति का का कारण नही होता, गगा की धारा मे पडा हुआ गदी नाली का पानी देवताओं के द्वारा भी पूजा जाता है।

चन्दन शीतल लोके, चन्दनादपि चन्द्रमा ।
चन्द्र-चन्दनयोर्मध्ये शीतला साधुसगति ।।

अर्थ—इस ससार मे चन्दन शीतल है और इससे भी अधिक चन्द्रमा किन्तु चन्दन और चन्द्रमा के बीच मे साधु सगति अधिक शीतल कही जाती है ।

न च राजभय, न च चोरभय, न च वृत्ति भय, न वियोग भयम् ।
इहलोक सुख, परलोक हित, श्रमणत्वमिद रमणीयतरम् ।।

अर्थ—श्रमण जीवन मे न राज का भय है न चोर का भय, न आजीविकोपार्जन का भय है और न वियोग का ही भय है । वह इस लोक मे सुखकारी और परलोक मे हितकारी है, अत श्रमण जीवन अत्यन्त रमणीय अर्थात् सर्वश्रेष्ठ है ।

मही रम्या शय्या, विपुलमुपधान भुजलता ।
वितान चाकाश व्यजनमनुकूलोऽयमनिल ।
स्फुरद्दीपश्चन्द्रो विरति वनिता सग मुदित ।
सुख शान्त शेते, मुनिरतनुभूति नृप इव ।।

अर्थ—रमणीय वसुन्धरा ही शय्या, मासल भुजदड उपधान-तकिया, आकाश ही चदोवा और अनुकूल पवन ही व्यजन-पखा, प्रकाशमान चन्द्र ही प्रदीप एव विरति रूपी वनिता के साथ परम प्रसन्न विशाल वैभव वाले नृप की तरहसाधु सुखपूर्वक-शान्त भाव से सोता है ।

घृष्ट घृष्ट पुनरपि पुनश्चन्दन चारु गन्धम् ।
छिन्न छिन्न पुनरपि पुन स्वादु चैवेक्षु काण्डम् ।

विद्या ददाति विनय, विनयाद् याति पात्रताम् ।
पात्रत्वाद्धनमाप्नोति, धनाद्धर्म ततः सुखम् ॥

अर्थ—विद्या विनय देती है और विनय से पात्रता आती है, पात्रता आने से धन मिलता है, धन से धर्म और फिर सुख प्राप्त होता है।

किं कुलेन विशालेन, विद्याहीनस्य देहिनः ।
अकुलीनोऽपि विद्यावान् देवैरपि सुपूज्यते ॥

अर्थ—विद्या विहीन व्यक्ति यदि महान् कुल का भी हो तो उससे कुछ लाभ नही होता। अकुलीन भी यदि विद्वान् हो तो वह देवो के द्वारा अच्छी तरह से पूजा जाता है।

जेण बंध च मोक्ख च, जीवाणं गतिरागति ।
आयाभाव च जाणति, सा विज्जा दुक्खमोयणी ।

अर्थ—जिसके द्वारा बन्ध मोक्ष, गति-अगति और आत्मरूप का ज्ञान हो, वही विद्या दुःख से मुक्त करने वाली है।

शुन पुच्छमिव व्यर्थं, जीवित विद्यया विना ।
न गुह्य गोपने शक्त, न च दश निवारणे ॥

अर्थ—विद्या के विना जीवन कुत्ते की पूछ की तरह व्यर्थ है। पूछ न तो गुह्य प्रदेश को ढक सकती और न दश दूर कर सकती है।

— पद्य —

दृश्य अदृश्य पदार्थ जो, सवसे मिलता ज्ञान
लेने वाले ले रहे, भूले पडे अजान ।

लो जान वेच कर भी, इल्मो-हुनर मिले ।
जिससे मिले, जहा से मिले, जिस कदर मिले ।

सआदत, मयादत इवादत है इल्म ।
हकूमत है, दौलत है, ताकत है इल्म ॥

उत्तम विद्या लीजिये यदपि नीच पै होय ।
पड्यो अपावन ठोर मे कचन तजत न कोय । वृन्द

—सूक्ति—

मूर्तिकार के सयोग से जैसे पत्थर देव का रूप ग्रहण कर लेता है, वैसे विद्या के सयोग से एक साधारण आदमी भी महान् वन जाता है।

वस्तुत विद्या पारस के तुल्य है जो किसी को अपने स्पर्श से काचन तुल्य वहुमूल्य वना देती है।

विद्या मनुष्य को अमर वनाती है।

उसको क्या कमी है जो विद्या का पुजारी है।

विद्वान् जहा भी जाता है, पूजा जाता है।

आत्मा

अमूर्तश्चेतनो भोगी, नित्य सर्वगतोऽक्रिय ।
अकर्ता निर्गुण सूक्ष्म आत्मा कापिलदर्शने ॥

स्याद्वाद मंजरी

अर्थ—सांख्यदर्शन मे आत्मा अमूर्त है, चेतनायुक्त है, स्वकृत भोगने वाली है, नित्य है, सर्वव्यापी है, क्रियाशून्य है, अकर्ता है, निर्गुण है और सूक्ष्म है।

नैन छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैन दहति पावक ।
न चैन क्लेदयन्त्यापो, न शोषयति मारुत ॥ गीता

अर्थ—इस आत्मा को न तो शस्त्र काट सकते है, न इसको आग जला सकती है, न इसको जल गीला कर सकता है, और न इसको वायु सुखा सकती है।

वासासि जीर्णानि यथा विहाय, नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-न्यन्यानि सयाति नवानि देही ।

गीता

अर्थ—जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रो का छोडकर नये वस्त्रो को धारण कर लेता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरो को छोडकर नए शरीरो को धारण कर लेती है।

उद्धरेदात्मनात्मानं, नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धु-रात्मैव रिपुरात्मन ॥ गीता

अर्थ—आत्मसयम द्वारा आत्मा का उद्धार करो। कुत्सित प्रवृत्तियो द्वारा आत्मा को विषाद-दु ख मत पहुँचाओ। आत्मा ही आत्मा की बन्धु है और आत्मा ही आत्मा की शत्रु है।

पुष्पे गन्ध तिले तैल, काष्ठेऽग्नि पयसि घृतम् ।
इक्षौ गुड तथा देहे, पश्यात्मान विवेकत ॥
चाणक्यनीति

अर्थ—जैसे-पुष्प मे गध तिल मे तैल, काष्ठ मे अग्नि और ईख मे गुड विद्यमान है, वैसे ही देह मे आत्मा को विवेक पूर्वक देखो।

पठन्ति वेदशास्त्राणि, बोधयन्ति परस्परम् ।
आत्मतत्व न जानाति दर्वीपाक रम यथा ॥

अर्थ—वेद, शास्त्रों को पढते है और आपस मे एक दूसरे को समझाते है किन्तु आत्मतत्व को नही जानते जैसे कलुछी (दर्वी) पाक रस को नही जानती।

आपदर्थे धन रक्षेद्, दारान् रक्षेद् धनैरपि ।
आत्मान सतत रक्षेद दारैरपि धनैरपि ॥

अर्थ—आपत्काल के लिए धन की रक्षा करो। धन से स्त्री की रक्षा करो तथा स्त्री एव धन से भी सदा आत्मा की रक्षा करो।

त्यजेदेक कुलस्यार्थे, ग्रामस्यार्थे कुल त्यजेत् ।
ग्राम जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवी त्यजेत् ॥

अर्थ—कुल रक्षा के लिए एक व्यक्ति का, ग्राम रक्षा के लिए एक कुल का

तेरे भावे जो करे, भला वुरा ससार।
नारायण तू वैठकर, अपना जरा विचार॥
सिद्धा जैसो जीव है, जीव सोही सिद्ध होय।
कर्म मेलरा अतरा, वूझे विरला कोय॥
सिंह समान यह जीव है, करे कर्म चक चूर।
पराक्रम फोडे मायाओ, तो मुक्ति कितिक दूर॥
कहा शान्ति का मूल है, ढूढ रहा ससार।
कस्तूरी निज नाभी मे, मृग ढूढत है वहार॥

अर्थ—मकार आदि वाली ये दश अत्यन्त चचल है, मन, मधुकर, मेघ, मानिनी, मदन, मरुत, मर्कट मा–लक्ष्मी, मद, और मत्स्य ।

चचल ही मन कृष्ण ! प्रमाथि वलवद् दृढम् ।
तस्याह निग्रह मन्ये, वायोरिव सुदुष्करम् । गीता

अर्थ—यह चचल मन जवर्दस्ती दृढता से मुझको आलोडित कर दिया है । मैं वायु की तरह उसका निग्रह अत्यन्त कठिन मानता हू ।

मणो साहसिओ भीमो दुट्ठमो परिधावई ।
त मम्मतु निगिह्णामि, धम्म सिक्खाइ कथग ।।

"उत्तराध्ययन'

अर्थ—मन ही साहसी एव भयकर दुष्ट घोडा है जो चारो ओर दौडता है । मैं उस कन्थक-जाति-मत घोडे को धर्म शिक्षा मे वश मे करता हू ।

असशय महावाहो ! मनो दुर्निग्रह चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय ! वराग्येणच गृह्यते ।। "गीता"

अर्थ—इसमे सशय नही कि मन चचल और वडी कठिनाई से वश मे आने वाला है । यह अभ्यास और वैराग्य के द्वारा पकडा जा सकता है ।

आकारैरिङ्गि तैर्गत्या, चेष्टया भाषणेन च ।
नेत्र वक्त्र विकारेण, लक्ष्यतेऽन्तर्गत मन ।।

अर्थ—आकृति, इगित गति, चेष्टा, भाषण नेत्र और मुख विकार मे अन्तर्गत मन को जाना जाता है ।

अर्थ—मकार आदि वाली ये दश अत्यन्त चचल है, मन, मधुकर, मेघ, मानिनी, मदन, मरुत, मर्कट मा—लक्ष्मी, मद, और मत्स्य।

चचल ही मन कृष्ण ! प्रमाथि वलवद् दृढम्।
तस्याह निग्रह मन्ये, वायोरिव सुदुष्करम्। गीता

अर्थ—यह चचल मन जवर्दस्ती दृढता से मुझको आलोडित कर दिया है। मैं वायु की तरह उसका निग्रह अत्यन्त कठिन मानता हू।

मणो साहसिओ भीमो दुट्ठसो परिधावई।
त मम्मतु निगिह्लामि, धम्म सिक्खाइ कथग।।

"उत्तराध्ययन"

अर्थ—मन ही साहसी एव भयकर दुष्ट घोडा है जो चारो ओर दौडता है। मैं उस कन्थक-जाति-मत घोडे को धर्म शिक्षा से वश मे करता हू।

असशय महाबाहो ! मनो दुर्निग्रह चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय ! वराग्येणाच गृह्यते।। "गीता"

अर्थ—इसमे सशय नही कि मन चचल और वडी कठिनाई से वश मे आने वाला है। यह अभ्यास और वैराग्य के द्वारा पकडा जा सकता है।

आकारैरिङ्गि तैर्गत्या, चेष्टया भाषणेन च।
नेत्र वक्त्र विकारेण, लक्ष्यतेऽन्तर्गत मन।।

अर्थ—आकृति, इगित गति, चेष्टा, भाषण नेत्र और मुख विकार मे अन्तर्गत मन को जाना जाता है।

मन जावे तो जाण दे, दृढ कर राख शरीर ।
खैंचे विन कमान के, किस विध निकसे तीर ॥

मन सब पर असवार है, मन का मता अनेक ।
जो मन पर असवार है, सो लाखन मे एक ॥
मन मतग माने नही, जब लग खता न खाय ।
जैसा विधवा नार के, गर्भ रहे पछताय ॥

इक साधे सब सधत है, सब साधे सब जाय ।
जो तू सीचो मूल को, फूलहि फलहि सवाय ॥

ब्रह्मा वाहन हस किया, विष्णु गरुड असवारी रे ।
शिव का वाहन वैल बना है, मूषक गणेश गुणधारी रे ।
मन वाहन पर वैठे विरला, वानर की वलिहारी रे ॥

सूक्ति

साधना के लिए वन वन मे भटकना व्यर्थ, घर मे ही मन साधना से सब कुछ सिद्ध हो जाता है ।

क्या जप और तप ? मन शुद्धि के विना सब व्यर्थ ।

कोई विविध-शास्त्रो मे पारगत क्यो न हो जाय ! किन्तु जब तक मनो निग्रह मे प्रवीण नही हो जाता, तब तक किसी अच्छे परिणाम की आशा व्यर्थ ।

क्षान्त्या शुध्यन्ति विद्वांसो, दानेनाकार्य कारिण ।
प्रच्छन्न पापा जापेन, तपसा सर्व एवहि ।।

अर्थ—क्षमा भाव से विद्वान् शुद्ध होते हैं, और दान से अनुचित कार्य करने वाले। छिपकर पाप करने वाले जप से और तप से सभी पाप धुल जाते है।

नन्दीषेण दृढ प्रहारि-जुठला अन्यो मुनि दण्डण ।
चाण्डालो हरि केशिनाम विदितो भूप प्रदेशी तथा ।।
एकस्त्री नर पट्कहा प्रतिदिन क्रूरोऽर्जुनोमालिक ।
कृत्वा क्षातियुत तपो, हतमला एते गता सद्गतिम् ।।

अर्थ—नन्दीसेन, दृढ प्रहारिचोर, जुठल श्रावक, मुनि ढंढन, चाण्डाल कुलीन हरि केशिमुनि, राजा प्रदेशी एक स्त्री और ६ पुरुषों को प्रतिदिन मारने वाला क्रूर अर्जुनमाली इन सब ने शान्ति युक्त तप से कर्म मल को नष्ट करके सदगति को प्राप्त किया।

तव नारायण जुत्तेण भित्तुण कम्म कञ्चुय ।
मुणी विगय संगामो, भवाओ परिमुच्चय ।।

''उत्तराध्ययन'

अर्थ—तप रूपी बाण से कर्मरूपी कंचुक-कवच को भेदन कर दो। जिनसे जीवन संग्राम मे पूर्ण विजय प्राप्त कर, महान मार्ग-मुक्ति पथ पर प्रयाण करो।

यद्दुस्तर यद्दुराप यद्दुर्गं यच्च दुष्करम् ।
सर्व तत् तपसा साध्य, तपो हि दुरतिक्रमम् ।।

अर्थ—जो कि दुस्तर-कठिनता से पार करने योग्य, दुराराप-कठिनाई से पाने योग्य, जो दुर्ग-कठिन और दुष्कर है, वे सब तप से सिद्ध हो जाते हैं क्योकि तप दुरतिक्रम-टालने योग्य नही होता है अर्थात् तपस्या से साध्य की सिद्धि हुए बिना नही रहती ।

"भव कोडी सचिय कम्म, तवसा निज्जरज्जइ" ।

अर्थात्—तपस्या से करोडो भव के सचित कर्म नष्ट हो जाते हैं ।

'असिधारा गमण चेव, दुक्कर चरिउ तवो" ।

अर्थात्—तलवार पर चलने की तरह तपश्चरण दुष्कर है ।

— सूक्ति —

जैसे अग्नि पर चढने से स्वर्ण का मैल जल जाता है, वैसे तपाग्नि मे तप कर आत्मिक मल का भी विनाश हो जाता है ।

तपस्या से ऐसा कोई भी साध्य नही जो सिद्ध नही होता ।

वस्तुत महानता की कसौटी तपस्या ही है ।

ससार मे जो जितने बडे महान् पुरुष हुए, उन्होने जीवन मे उतना ही अधिक तप किया ।

समाराऽऽसक्त चित्ताना, मृत्युभीत्यै भवेन्नृणाम् ।
मोदायते पुन सोऽपि, ज्ञान वैराग्य सभृताम् ।।

अर्थ—ससार मे आसक्त मन वाले मनुष्यो के डर के लिये मृत्यु है। मगर वही मृत्यु ज्ञान वैराग्य से भरे जनो के लिए प्रसन्नता देने वाली होती है।

य य वाऽपि स्मरन्, भाव, त्यजन्त्यन्ते कलेवर ।
त तमेवैति कौन्तेय ! सदा तद्भावभावित ।।

अर्थ—जिन-जिन भावो को स्मरण करते हुए हे अर्जुन ! अन्त मे आत्मा शरीर छोडता है, वह उस भाव से भावित होने के कारण उसी शरीर को प्राप्त करता है।

अन्तो मुहुत्तमि गए, अन्तोमुहुत्तम्मि सेसए चेव ।
लेसाहिं परिणयाहिं जीवा गच्छन्ति परलोयम् ।।

अर्थ—अन्तर्मुहूर्त बीतने पर और अतर्मुहूर्त शेष रहने पर, शुभ लेश्याओ मे परिणत जीव परलोक को जाता है।

मर्तव्यमिति यद्दुःख, पुरुषस्योपजायते ।
शक्यस्तेनानुमानेन, परोऽपि परिरक्षितुम् ।।

अर्थ—इस ससार मे मरूगा इसका जितना दु ख पुरुष को होता है, उसी अनुमान से दूसरे की रक्षा करनी भी शक्य है।

वर प्रवेष्टु ज्वलित हुताशन, न चापि भग्न चिरसचित व्रत ।
वरहि मृत्यु सुविशुद्ध चेतस न चापि शीलस्खलितस्य जीवनम ।

अर्थ—प्रज्वलित अग्नि मे प्रवेश करना श्रेष्ठ है किन्तु चिर सचित व्रत को तोडना ठीक नही। विशुद्ध हृदय का मरण ठीक किन्तु भ्रष्ट सदाचारी जीवन ठीक नही।

— सूक्ति —

अगर ससार मे मृत्यु नही होती, तो न जाने जुल्म क्या-क्या नही होते ?

मृत्यु ही के डर से लोग फू क-फू क कर कदम रखते है ।

मैं क्या था, यह मरने के बाद ही प्रमाणित होता है ।

आप मृत्यु को सुधार सकें तो जीवन सुधरा समझिये ।

— — — —

२०

भाग्य

भाग्य फलति सर्वत्र, न विद्या न च पौरुषम् ।
समुद्रमथनाल्लेभे हरिर्लक्ष्मी हरो विषम् ।।

अर्थ—सब जगह भाग्य ही फलता है विद्या एवं पुरुषार्थ नहीं। समुद्र का मन्थन करने से भाग्यानुसार हरि को लक्ष्मी एवं महादेव को जहर मिला।

पत्रं नैव यदा करीर विटपे दोषो वसन्तस्य किं ।
नोलकोऽप्यवलोकते यदि दिवा सूर्यस्य किं दूषणम् ।
वर्षा नैव पतन्ति चातकमुखे मेघस्य किं दूषणं ।
यत्पूर्वं विधिना ललाट लिखितं तन्मार्जितुं कः क्षमः ।।

"चाणक्य नीति"

अर्थ—करीर वृक्ष पर पत्र नहीं आते, इसमे वसन्त ऋतु का क्या दोष? उल्लू दिन मे नहीं देखता, इसमे सूर्य का क्या दोष? चातक पक्षी के मुख मे मेघ की धारा नही जाती। (उसके गले मे छिद्र होता है) इसमे मेघ का क्या दोष? पहले ही विधि द्वारा लिखे गये कपाल लेखो को कोई नही मिटा सकता।

नृपस्य चित्त कृपरणस्य वित्त, मनोरथ दुर्जनमानसानाम् ।
स्त्रियश्चरित्र पुरुषस्य भाग्य, देवो न जानाति कुतो मनुष्य ।।

'सुभाषितरत्न भाण्डागार'

अर्थ—राजा का चित्त, कृपरण का धन, दुर्जनो का मनोरथ, स्त्री का चरित्र और पुरुष का भाग्य-इन सबको देवता भी नही जान सकता, मनुष्य की तो बात ही क्या ?

अरक्षित तिष्ठति दैवरक्षित, सुरक्षित दैवहत विनश्यति ।
जीवत्यनाथोऽपि वने विसर्जित, कृतप्रयत्नोऽपि गृहे न जीवति ।।

अर्थ—भाग्य से रक्षित विना किसी और रक्षा के भी रह जाता है, और सर्वथा सुरक्षित भाग्यहत व्यक्ति नष्ट हो जाता है। वन मे छोडा हुआ अनाथ भी वच जाता है तथा वहुत यत्न करने पर भी घर मे नही वचता ।

भग्नाशस्यकरण्ड पीडिततनोम्लनिन्द्रियस्य क्षुधा ।
कृत्वाखुर्विवर स्वय निपतितो नक्त मुखे भोगिन ।।
तृप्तस्तत्पिशितेन सत्वरमसौ तेनैव यात पथा ।
लोका पश्यत दैवमेव हि नृणा वृद्धौ क्षये कारणम् ।।

"भर्तृहरि-नीतिशतक"

अर्थ—भूख से म्लान इन्द्रियो वाला निराश एक साँप पिटारी मे पडा हुआ है। चूहा आया और पिटारी को काटकर अन्दर घुसा कि सीधा साप के मुख मे जा पडा। साँप उसके मास से तृप्त होकर उसी के किये हुए मार्ग से निकल कर चला गया। लोगो ! देखो, वृद्धि और हानि मे भाग्य ही मुख्य कारण है उद्यम नही ।

प्राप्तव्यो नियति बलाश्रयेण योऽयं ,
सोऽवश्य भवति नृणा शुभोऽशुभो वा ।
भूताना महतिकृतेऽपि प्रयत्ने,
नाभाव्य भवति न भाविनोऽस्ति नाश ॥

अर्थ—भाग्य के बल से जो अर्थ प्राप्त होने योग्य है, वह चाहे शुभ या अशुभ हो, अवश्य प्राप्त होता है। प्राणियों के द्वारा अत्यन्त प्रयत्न किए जाने पर भी नहीं होने वाला कार्य नहीं होता और न भावी का ही नाश होता है।

नहि भवति यन्न भाव्य, भवति च भाव्य विनाऽपियत्नेन ।
करतलगतमपि न पूयति, यस्यतु भवितव्यता नास्ति ॥

अर्थ—जो होनहार नही है, नही होता है और होनहार बिना यत्न के भी हो जाता है। हाथ मे आया भी नही प्राप्त होता जिसकी भवितव्यता नही है।

तादृशी जायते बुद्धि, र्व्यवसायोऽपि तादृश ।
सहाया तादृशाश्चैव, यादृशी भवितव्यता ॥

अर्थ—जैसी भवितव्यता होती है, वैसी ही बुद्धि, व्यवसाय और सहायक भी मिल जाते है।

अवश्य भावि भावाना, प्रतीकारो भवेद्यदि ।
तदा दुखैर्न लिप्येरन् नल-राम-युधिष्ठिरा ॥

अर्थ—अवश्य होने वाली बात का यदि कोई प्रतीकार होता तब नल राम और युधिष्ठिर दु खो से लिप्त नही होते।

पूर्व जन्म कृत कर्म तद्दैवमिति कथ्यते ।
तस्मात् पुरुषकारेण विनादैव न सिध्यति ॥

अर्थ—पूर्व जन्म के किये कर्म को ही दैव (भाग्य) कहते है। अत पुरुषार्थ के विना भाग्य भी सिद्ध नही होता।

अवश्य भाविनो भावा, भवन्ति महतामपि।
नग्नत्व नीलकण्ठस्य, महाहिशयन हरे ॥

"हितोपदेश"

अर्थ—होनहार भाव होकर ही रहते है, महापुरुष भी उनसे नही वच सकते। देखिये—महादेव नगे रहते है और विष्णु महा सर्प पर सोते है।

उदयति यदि भानु पश्चिमाया दिशाया।
विकसति यदि पद्म पर्वताग्रे शिलायाम्।
प्रचलति यदि मेरु शीतता याति वह्नि।
स्तदपि न चलतीय भाविनी कर्म-रेखा।

'सुभाषितरत्न भाण्डागार"

अर्थ—चाहे सूर्य पश्चिम दिशा मे उग जाय कमल पर्वत की शिला पर खिल जाय, हवा से मेरु पर्वत चलित हो जाय और अग्नि शीतल हो जाय तो भी भाविनी कर्म-रेखा विचलित नही होती।

आरोहतु गिरि-शृ ग, तरतु समुद्र प्रयातु पाताल।
विधि लिखिताक्षरमाल, फलति कपाल च भूपाल ॥

अर्थ—पर्वत की चोटी पर चढें, समुद्र को तरें, पाताल को जायें मगर कपाल पर लिखी विधि लिपि फलती है, चाहे राजा ही क्यो न हो ?

नैवाकृति फलति नैव कुल न शील,
विद्यापि नैव न च यत्नकृतापि सेवा।

वने रणे शत्रुजलाग्निमध्ये, महार्णवे पर्वतमग्तके वा ।
सुप्त प्रमत्त विपमम्थित वा, रक्षन्ति पुण्यानि पुराकृतानि ।।

'भतृ हरि नीतिशतक"

अथ—वन मे, रणभूमि मे, शत्रुओ मे जल मे, अग्नि मे, बडे समुद्र मे, पर्वतो के शिखर पर, सोते समय, प्रमाद की अवस्था मे, विपम परिस्थिति मे–इन सब प्रसगो मे पूर्वसचित पुण्य ही रक्षा करते है ।

भीम वन भवति तस्य पुर प्रधान,
सर्वो जन सुजनतामुपयाति तस्य ।
कृत्स्ना च भूर्भवति सन्निधिरत्नपूर्णा,
यस्यास्ति पूर्वसुकृत विपुल नरस्य भर्तृहरिनीतिशतक"

अर्थ—जिसके पूर्वकृत पुण्यविपुल होता है उसके भयकर जगल अच्छा नगर वन जाता है, सब लोग उसके लिए भले वन जाते है और सारी पृथ्वी रत्नमयी वन जाती है ।

— पद्य —

लूखै धान न धापता, ल्यास पलासा तेल ।
मीरो ही वादी करै, देख दई का खेल ॥

राजस्थानी दोहा

सुनहु भरत भावी प्रवल, विलखि कहेउ मुनिनाथ ।
हानि लाभ जीवन मरण, जस अपजस विधि हाथ ॥

रामचरित मानस

कर्म कमण्डलु कर लिए, तुलसी जह जह जाय ।
सागर सरिता कूप जल, बूद न अधिक समाय ॥

मान सरोवर माय, वक, मराल भेला वसै ।
खाज आपणे खाय, भाग प्रमाणे भेरिया ॥ "सोरठा सग्रह"

मुकद्दर का लिखा मिटता नही आँसू वहाने से ।
यह वह होनी हैं जो होकर रहेगी हर वहाने से ॥ "साहिर"

इन्सान समझता है कि तदवीर है सब कुछ ।
मजबूरियाँ कहती हैं कि तकदीर भी कुछ है ॥ "अर्श"

किस्मत मे जो लिखा है, वह आएगा आपसे ।
फैलाइए न हाथ न, दामन पसारिये ॥

— सूक्ति —

इतनी वडी पृथ्वी मे भाग्य के मारे को कही भी स्थान नही मिलता ।
भाग्य की प्रवलता के आगे किसी का कुछ भी नही चलता ।
आप कुछ भी करे, भाग्य के आगे हार माननी ही होगी ।

२१

पुरुषार्थ

उद्यम साहस धैर्य, बल बुद्धि पराक्रम ।
षडेते यत्र विद्यन्ते, तस्माद् देवो ऽपि शङ्कते ।। 'सुभाषित'

अर्थ—उद्यम, साहस, धैर्य बल बुद्धि और पराक्रम ये छः जिसके पास होते हैं, उससे देव भी डरता है ।

उद्यमेन हि सिद्ध्यन्ति, कार्याणि न मनोरथैः ।
नहि सुप्तस्य सिंहस्य, प्रविशन्ति मुखे मृगा ।।

अर्थ—उद्यम करने से ही कार्य सिद्ध होते हैं, मनोरथ मात्र से नहीं । सोए हुए सिंह के मुख में मृग स्वयं नहीं घुसता । सिंह को मृग पकडने के लिए उद्यम-पुरुषार्थ करना पडता है ।

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी,
दैवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति ।
दैवं विहाय कुरु पौरुषमात्मशक्त्या,
यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यति कोऽत्र दोषः ।।

अर्थ—उद्योगी पुरुषसिंह को लक्ष्मी प्राप्त करती है । भाग्य देगा ऐसे कायर पुरुष बोलते है । भाग्य को हटा कर अपनी शक्ति से पौरुष करो । यदि यत्न करने पर भी सिद्धि न मिले तो फिर इसमें कौन दोष ?

कलि शयानो भवति, सजिहानस्तु द्वापर ।
उत्तिष्ठस्त्रेता भवति, कृत सपद्यते चरन् ।।

अर्थ—सोने वाला कलियुग होता है, निद्रात्यागी द्वापर, खडा होने वाला त्रेता तथा श्रम-पुरुषार्थ करने वाला सत्ययुग वन जाता है ।

निपानमिव मण्डूका, सर पूर्णमिवाण्डजा ।
सोद्योग नरमायान्ति, विवशा सर्व सम्पद ।।

अर्थ—जैसे छोटे २ मेढक छोटे छोटे तलैया मे जाते है, पक्षिया सरोवरो मे जाती है, वैसे उद्योगी-पुरुषार्थी पुरुषों के पास सारी सम्पत्तिया विवश होकर जाती है ।

यज्जीवति क्षणमपि प्रथित मनुष्यै,
विज्ञान विक्रम यशोभिरभज्यमानम् ।
तन्नाम जीवितमिह प्रवदन्ति तज्ज्ञा,
काको ऽपि जीवति चिराय वलिच भुड् क्ते ।।

अर्थ—ज्ञान, पराक्रम-पुरुषार्थ एव कीर्ति के साथ मनुष्यो मे प्रसिद्ध होकर जो इस ससार मे क्षण भर भी जीता है विद्वान् लोग उसीके जीवन को जीवन कहते हैं । यो तो कौआ भी वलि खाकर जीता है ।

काष्ठादग्नि जायते मथ्यमानाद्, भूमिस्तोय खन्यमाना ददाति,
सोत्साहाना नास्त्यसाध्य नराणा, मार्गारब्धा सर्वयात्रा फलन्ति ।

भास

अर्थ—लकडी से अग्नि मथने पर निकलती है और खोदने पर भूमि से पानी निकलता है । मार्ग पर निरन्तर चलते रहने से सभी यात्राए सफल होती है । वस्तुत उत्साही-पुरुषार्थी व्यक्तियो के लिए ससार मे कोई भी कार्य असाध्य नही है ।

जरा दरिया की तह तक, पहुँच जाने की हिम्मत कर।
तो फिर ऐ डूबने वाले, किनारा ही किनारा है॥

सर शमा सा कटाइए, पर दम न मारिए।
मंजिल हजार दूर हो, हिम्मत न हारिए॥ आजाद

कदम चूम लेती है खुद आके मंजिल।
मुसाफिर अगर आप, हिम्मत न हारे॥

— सूक्ति —

पुरुषार्थ नर को नारायण बना देता है

ऐसी कोई भी समस्या नही, जिसे पुरुषार्थी सुलझा न लेता हो।

पुरुषार्थ को पकडे रहिए सभी मुश्किल आसान हो जाएगे।

२२

कर्म

ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो ब्रह्माण्ड भाण्डोदरे,
विष्णुर्येन दशावतारगहने क्षिप्तो महासकटे ।
रुद्रो येन कपालपाणि पुटके भिक्षाटन कारित',
सूर्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने तस्मै नम कर्मणे ।।

भर्तृहरि-नीतिशतक

अर्थ—जिस कर्म ने ब्रह्मा को कुम्हारवत् सृष्टि रचना मे नियत किया विष्णु को दश अवतार लेने के सकट मे डाला, रुद्र को खोपडी हाथ मे लेकर भीख मागने का दु ख दिया और जिसके बल से सूर्यदेव सदा आकाश मे भ्रमण करता है, उस कर्म को हमारा नमस्कार है ।

वैद्या वदन्ति कफ-पित्त-मरुद्विकार,
ज्योति-र्विदो ग्रहगण परिवर्तयन्ति ।
भूताभिषङ्ग इति भूतविदो वदन्ति,
प्राचीनकर्म वलवन् मुनयो वदन्ति ।।

सुभाषित रत्नभाण्डागार

अर्थ—जिसको वैद्य कफ, पित्त और वायु का विकार (रोग) कहते है, ज्योतिषी लोग ग्रह गणो का चक्र वतलाते है और भूतवादी भूतो का लगाव मानते है । ज्ञानी मुनि उसी को पूर्वकृत कर्म वलवान् है और सब उसी का दोष है-ऐसा कहते हैं ।

अवश्यमेव भोक्तव्य, कृत कर्म शुभाशुभम् ।
नाभुक्त क्षीयते कम, कल्पकोटिशतैरपि ।।

"विक्रम चरित्र"

अर्थ—भोगे बिना करोड़ो कल्पो मे भी कर्मों का क्षय नही होता। किये हुए शुभा-शुभ कम अवश्य भोगने ही पड़ते है।

इत एक नवते कल्पे, शक्त्या मे पुरुषो हत ।
तस्य कर्म विपाकेन, पादे विद्धोऽस्मि भिक्षव ।।

महात्मा बुद्ध

अर्थ—अब से इक्यानवे कल्प पहले मेरी शक्ति द्वारा एक पुरुष मारा गया था। उसके कम-विपाक मे हे भिक्षुओ! मेरा पैर काँटे मे बींधा गया है।

यथा धेनुसहस्रेषु, वत्सो विन्दति मातरम् ।
तथैवेह कृत कर्म, कर्तारमनुगच्छति ।।

'चाणक्यनीति"

अर्थ—जैसे हजारो गायो के होने पर भी बछड़ा सीधा अपनी माता के पास जाता है, उसी प्रकार इस ससार मे कृत-कर्म भी अपने कर्ता का ही अनुसरण करता है अर्थात् उसी को सुख-दु ख रूप फल देता है।

नमस्यामो देवान् ननुहतविधेस्तेऽपि वशगा ।
विधिर्वंद्य सोऽपि प्रतिनियत कर्मैक फलद ।।
फल कर्मायत्त यदि किमपरै किं च विधिना ।
नमस्तद् कर्मभ्य प्रभवति चयेभ्यो विधिरपि ।।

अर्थ—क्या देवो को हम सब नमस्कार करें तो निश्चय वे भी दुर्भाग्य के वश मे है। भाग्य वन्दन के योग्य है तो वह भी पूर्वकृत के अनुकूल फल देने

वाला है। फल जब कर्म के अधीन है तो दूसरो से क्या और भाग्य से क्या ? उसी कर्म के लिए नमस्कार है जिससे भाग्य भी प्रभावित होता है।

यथा यथा पूर्व कृतस्य कर्मण फलं निदानस्थमिहोपतिष्ठते ।
तथा तथा पूर्वकृतानुसारिणी, प्रदीप हस्तेव मति प्रवर्तते ।।

अर्थ—जैसे२ पूर्वकृत कर्म के फल का निदान करने को यहा उपस्थित होते हैं, वैसे२ पूर्व कृत के अनुसरण करने वाली बुद्धि हाथ मे दीप लिए प्रवृत्ति करती है।

स्वकर्मणायुक्त एवसर्वोह्यु त्पद्यते जन ।
स तथा कृष्यते तेन न यथा स्वयमिच्छति ।।

अर्थ—अपने कर्म से युक्त ही सभी जन उत्पन्न होते हैं वे उस कर्म के द्वारा ऐसे खीच लिए जाते है जैसा कि वे स्वय नही चाहते है।

नीचैर्गोत्रावतारश्चरमजिनपते मल्लिनाथेऽबलात्व ।
मान्ध्य श्री ब्रह्मदत्ते भरत नृप जय सर्वनाशश्च कृष्णे ।
निर्वाण नारदेऽपि प्रशम परिणति स्याच्चिलाती सुते वा ।
त्रैलोक्याश्चर्य हेतुर्जयति विजयिनि कर्म निर्माण शक्ति ।।

अर्थ—अन्तिम तीर्थंकर का नीचे गोत्र मे अवतार, मल्लिनाथ मे नारीत्व का प्रभाव, श्री ब्रह्मदत्त मे अन्धता, कृष्ण मे भारतीय नृपति के जय मे सर्वनाश, नारद मे भी निर्वाण, चिलाती सुत मे प्रशम की परिणति इस तरह त्रिलोक आश्चर्य का कारण विजयिनी कर्म निर्माण की शक्ति की जय हो।

— पद्य —

तारो की ज्योति मे चन्द्र छिपे नही, सूर्य छिपे नही बादल छाये ।
इन्द्र की घोर से मोर छिपे नही, सर्प छिपे नही पूगी बजाये ।।

जग जुरे रजपूत छिपे नहीं, दाग छिपे नहीं नाग डसाण ।
जोगी का वेष अनेक करो पर कर्म छुपे न भभूति रमाण ॥

आडी न आवे मायडी, आडा न आवे बाप ।
किया कर्म जो भोगवे, भुगते आपो आप ॥

किए सब माहि बांधीया, दिए सब उदय में आय ।
ऐसा समझ कर हे नर ! कर्म बाध तू नाय ॥

कर्म प्रताप तुरग नचावत, कर्म से छत्रपतीपत होई ।
कर्म से पूत सपूत कहावत, कर्म से और बडो नहीं कोई ।
कर्म फिर्यो जब रावण को, तब सोने की लङ्का पलक में खोई ।
आप बडाई कहा करे मूरख कर्म करे सो करे नहिं कोई ॥

कर्म कमण्डल कर लिये, तुलसी जहं तहं जात ।
सागर सरिता कूप जल, अधिक न बूंद समात ॥

—सूक्ति—

कर्म बलवान् है, कोई भी इसके आगे अपना प्रभुत्व नहीं दिखा सकता ।

कर्म फल सबको भोगना पडता है ।

२३

काल और कलिकाल

काल सृजति भूतानि, कालः सहरते प्रजा ।
काल सुप्तेषु जार्गति, कालोऽय दुरतिक्रम ।।

महाभारत आदिपर्व

अर्थ—काल ही प्राणियो को उत्पन्न करता है और काल ही प्रजा का सहार करता है। सारी दुनिया के सो जाने पर भी काल जागृत रहता है अत यह काल दुरतिक्रम है अर्थात् टालने योग्य नही है।

प्रातर्द्यूत प्रसङ्गेन, मध्याह्ने स्त्रीप्रसङ्गत ।
रात्रौ चौर प्रसङ्गेन, कालोगच्छति धीमताम् ।।

चाणक्यनीति ९।११

अथ—बुद्धिमान् प्रात काल द्यूत-प्रसङ्ग (महाभारत की कथा) मे मध्याह्न स्त्री प्रसङ्ग (रामायण) से और रात्रि चोर (कृष्ण) के प्रसङ्ग मे काल व्यतीत करते है।

फलति वृक्षा कालेन, काले वीर्यमवाप्यते ।
काले पुष्पवती नारी सर्व कालेन जायते ।।

अथ – समय पर वृक्ष फलता है, समय पर बल की प्राप्ति होती है, समय पर नारी गर्भवती होती है, इस तरह सब कुछ समय पर ही होता है।

पुरन्दर सहस्राणि, चक्रवर्तिशतानि च ।
निर्वापितानि कालेन, प्रदीपा इव वायुना ।।

अर्थ—हजारों इन्द्र, सैकड़ों चक्रवर्ती समय के द्वारा बुझा—मिटा दिए गए जैसे वायु के द्वारा प्रदीप ।

भ्रात कष्टमहो महान् स नृपति, सामन्त चक्र च तत् ।
पार्श्वे सा च विदग्धराज परिषत्, ताश्चन्द्रबिम्बानना ।।
उन्मत्त स च राजपुत्र निवहस्ते बन्दिनस्ता कथा ।
सर्व यस्य वशादगात् स्मृतिपथ, कालाय तस्मै नम ।।

अर्थ—हे भाई ! बहुत दुःख है कि वह महान् राजा, जिसको सामन्त और चक्री घेरे रहते थे, जिसके बगल में श्रेष्ठ विद्वानों की परिषद् बैठती थी, वे चन्द्रमुखियां वे उन्मत्त राजपुत्रों के समूह, वे बंदीजन तथा उनकी वे कथाएँ जिनके बल से स्मृति की वस्तु बन गयी, उस काल को नमस्कार है ।

ब्रह्मा विश्नुदिने याति, विष्णू रुद्रस्य वासरे ।
ईश्वरस्य तथा सोऽपि, क कालं लंघितु क्षम ।।

अर्थ— ब्रह्मा विष्णु के दिन में मिलते है और विष्णु रुद्र के दिन में तथा रुद्र विष्णु के दिन में याने काल का उल्लंघन कौन करने में समर्थ है ?

जात सूर्यकुले, पिता दशरथ क्षौणीभुजामग्रणी,
सीता सत्यपरायणा प्रणयिनी, यस्यानुजो लक्ष्मण ।
दोर्दण्डेन समो न चास्ति भुवने, प्रत्यक्ष विष्णु स्वय,
रामोयेन विडम्बितोऽपि विधिना चान्ये जने का कथा ।।

अर्थ—सूर्यवंश में उत्पन्न हुआ, पिता दशरथ जो कि पृथ्वी पतियों में अग्रणी

थे, और सत्य परायणा सीता जिनकी प्रणयिनी थी, लक्ष्मण जिसके छोटे भाई थे, जिनके धनुष का कोई जोड नही था। जो कि स्वय विष्णु थे ऐसे राम भी जिस कालके द्वारा विडम्बित हुए, दूसरे लोगो मे तो वात ही क्या ?

अशन मे वसन मे, दारा मे बन्धुवर्गो मे
इति मे मे कुर्वाणा, कालवृको हन्ति पुरुषाजम् ।।

अर्थ—मुझे भोजन है, मुझे वस्त्र है मुझे पत्नी है और बन्धुवर्ग है—इस तरह मे मे करने वाले पुरुष छाग को काल वृक मार देता है।

कलिकाल—

दाता दरिद्री, कृपणोधनाढ्य , पापीचिरायु सुकृतिर्गतायु ।
कुले च दास्य, अकुले च राज्य, कलौयुगे षडगुणमावहन्ति ।।

अर्थ—दाता गरीव, कृपण धनवान्, पापी दीर्घजीवी और पुण्यशील अल्पायु, कुलीनो मे दासता और अकुल मे राज्य ये छ गुण कलियुग मे प्राप्त होते हैं।

सीदन्ति सन्तो विलसन्त्यसन्त , पुत्रा म्रियन्ते जनकश्चिरायु. ।
परेषु मैत्री स्वजनेषु वैर, पश्यन्तु लोका कलिकौतुकानि ।।
—सुभापितरत्नभाण्डागार

अर्थ—सँत दु ख पा रहे हैं, असन्त मौज उडा रहे है, पुत्र मर रहे हैं। पिता चिरायु हो रहे है तथा दुश्मन से मित्रता हो रही है एवँ स्वजनो से वैर वढ रहा है। लोगो! देखो—ये सव कलिकाल के कौतुक हैं।

न देवे देवत्व कपट—पटवस्तापसजना
जनो मिथ्यावादी विरलतरवृष्टिर्जलधरः ।

प्रगन्नो मीचानामवनिगतयो दुग्ट मनगो,
जना भ्रष्टा नष्टा अहह ! कलिकाल प्रभवति ।।

अथ—आण्नय है कि उस कलिकाल के प्रभाव से देश मे दमन नही रहा, साधु-सन्यासी कपट-क्रिया मे निपुण हो गये, लोग असत्यमार्गी हो गये मेघ थोडे बरसने लगे, नीचो का अवसर बढ गया, राजा बुरी नीति वाले हो गये सब लोग प्राय नष्ट-भ्रष्ट हो गये।

धर्म प्रव्रजितस्तप प्रचलित सत्य च दूरं गत
पृथ्वी मन्दफला नराश्च कुटिला लोभ गतास्तापसा ।
राजानोऽर्थपरा न रक्षणपरा पुत्रा पितुर्द्वेषिण,
साधु सीदति दुर्जन प्रभवति प्राप्ते कलौ दुर्युगे ।।

अर्थ—इस बुरे कलियुग मे, धम ने तो सन्यास ले लिया, तप विचलित हो गया, सत्य दूर चला गया, पृथ्वी मन्दफल वाली हो गई, मनुष्य कुटिल हो गये एव उनके मन मे दुष्टता भर गई, राजा प्रजा के रक्षक न होकर धन के लोभी बन गये और पुत्र पिता के द्वेषी बन गये। आज सज्जन दु ख पा रहे है और दुजन शक्तिशाली बन रहे है।

सदय हृदय यस्य, भाषित सत्य भूषित ।
काय परहिते यस्य, कलिस्तस्य करोति किम् ।।

दयायुक्त जिसका हृदय है और वचन सत्य से भूषित है,
शरीर परोपकार मे लगा है, कलियुग उसका क्या कर सकता है ?

— पद्य —

समझणहार सुजान, नर अवसर चूके नहिं,
अवसर रो अहसान, रहै घणा दिन राजिया । "सोरठा सग्रह

नव भी मरग्या, दस भी मर गया, मर गया सहस अट्ठासी ।
तैंतीस करोड देवता मर गया, अजब काल की फासी ।।

काल करे सो आज कर, आज करे सो अब ।
पल मे परलय होयगी, बहुरि करेगो कब ।।
सातो शब्दज बाजते, घर घर होते राग ।
ते मदिर खाली पडे, बैठन लागे काग ।।
परदा रहती पद्मिनी, रखती कुल की आन ।
छढी जो पहुँची काल की, डेरा हुआ मसान ।
काल मरे तो आज मर, आज मरे तो अब ।
इन्धन पै राशन भयो, फेर मरेगो कब ।।

राजस्थानी दोहा

सूली ऊपर घर करे विष का करे आहार ।
काल उसका क्या करे, जो आठ पहर होशियार ।।

चाहत है धन होय किसी विध, तो सब काज सरे जियराजी ।
गेह चुनाय करु गहना कछु, ब्याहि सुता सुत बांटिये भाजी ।।

चिन्तत यो दिन जाहि चले, जम आय अचानक देत दगाजी ।
खेलते खेल खिलाडी गये, रह जाय रूपी शतरज की बाजी ।।

दरिद्र का इलाज कीजे, वेद को बुलाय लीजे,
रोगी का इलाज कीजे दीजे पाणी दालका,
राडका इलाज कीजे बीच मे विश्राम लीजे,
राजका इलाज कीजे दीजे लोभ माल का,
भाईका इलाज कीजे मीठा वयण बोल लीजे,
दुर्जन का इलाज कीजे देदे ओटा ढालका,
कहे कवि माधोदास कबलग करू बखाण,
सबका इलाज पण इलाज नहि कालका ।।

सेवा

मौनान्मूक प्रवचन पटुश्चाटुको जल्पको वा ।
धृष्ट पार्श्वे वसति च यदा दूरतश्चाप्रगल्भ ।।
क्षान्त्या भीरुर्यदि न सहते प्रायशो नाभिजात ।
सेवाधर्म परम गहनो, योगिनामप्यगम्य ।।

अर्थ—सेवक यदि मौन रखे तो मूक बोलने मे चतुर हो तो बातूनी या वाचाल, पास मे रहे तो ढीठ, दूर रहे तो मूर्ख, सहनशील हो तो डरपोक और सहन न करे तो प्राय अकुलीन कहा जाता है। यत सेवा धर्म अत्यन्त कठिन है और योगियो के लिए भी अगम्य है, कठिन है।

अत्यासन्ना विनाशाय, दूरस्था न फलप्रदा ।
सेव्यन्ता मध्य भावेन, राजावह्नि गुरु स्त्रिय ।।

अर्थ—राजा, अग्नि, गुरु, स्त्री, इनकी सेवा दूर रह कर करने से फलप्रद नही होती है और पास रहकर करने से विनाश का कारण बनती है। अत मध्यम भाव से इनकी सेवा करनी चाहिये।

अग्निराप स्त्रियो मूर्ख सर्पो राज कुलानिच ।
नित्य यत्नेन सेव्यानि, सद्य प्राण हराणि षट् ।।

अर्थ—अग्नि जल, स्त्री मूर्ख, सर्प और राजवशीय ये सद्य प्राण हरण करने वाले है, अत इनकी सेवा सावधानी पूर्वक करनी चाहिये।

वेयावच्च नियय करेह, उत्तर गुणे धरित्ताण ।
सव्व किल पडिवाई, वेयावच्च अपडिवाई ।।

"ओघटीका"

अर्थ—उत्तम गुण धारण करने वालो की नियत सेवा करो । और सब गुण मन से निकल जाते, पर सेवा गुण कभी भुलाया नही जाता ।

बाल वृद्ध यतीनाञ्च, रोगिणा यद् विधीयते ।
स्वशक्त्या यत्प्रतीकारो, वैयावृत्य तदुच्यते ।।

अर्थ—बाल वृद्ध एव रोगी साधु जनो की शक्ति भर, पीडा का प्रतीकार करना ही सेवा कही जाती है ।

पृष्ठत सेवयेदर्क, जठरेण हुताशनम् ।
स्वामिन सर्व भावेन, परलोकममायया ।।

अर्थ—सूर्य का सेवन पीठ से करें और आग का पेटसे, स्वामी की सेवा सभी भावो से तथा परलोक की सेवा मायारहित होकर करें ।

— पद्य —

पतन की सेवा किये, प्रभु रीझत है आप
जाके बाल खिलाइए, उसका रीझत बाप ।

किसी दुनिया के वन्दे को, अगर शौके-शहादत हो ।
तो उसका काम दुनिया मे, सदा इन्सा की खिदमत हो ।

वही है जिन्दगी जो, नाम पाती है भलाई मे ।
खुदी को छोड कर जो, पहुँच जाती खुदाई मे ।

सेवा से पापी सुधरे, शुभ पुण्य खजाना भरता है,
नदिषेण और बाहु बली का अनुपम सुख बल पाता है ।

खिदमत करूँ मैं सबकी, खिदमत गुजार बन कर।
दुश्मन के भी न खटकूँ, आँखों में खार बनकर॥

तमन्ना दर्दे दिल की हो तो, कर खिदमत फकीरों की,
नहीं मिलता है यह गौहर, बादशाहों के खजाने में।

— सूक्ति —

सेवा में चाहे जैसी भी कठिनाई प्रतीत हो मगर परिणाम उसका मधुर होता है।

गुरु की सेवा से ही विद्या प्राप्त होती और मूर्ख विद्वान् हो जाता है।

शरीर स्वस्थ हो तो सेवा में बहुत बड़ा लाभ उठाया जा सकता है।

सेवा और अहं का कभी साथ नहीं रहता।

मोक्ष

दोसा जेरा निरु भति जेरा खिज्जति पुव्व कम्माइ ।
सोसो मोक्खोवाम्रो रोगावत्थासु समरा व ।।

अर्थ—जिस किसी क्रिया से रागादि दोषो का निरोध होता हो तथा पूर्व सचित कर्म क्षीरा होते हो, वे सव मोक्ष के साधक उपाय है। जैसे कि रोग को शान्त करने वाला प्रत्येक अनुष्ठान चिकित्सा के रूप मे आरोग्यप्रद है।

नाशाम्वरत्वे न सिताम्वरत्वे, न तर्कवादे नच तत्ववादे ।
न पक्ष सेवाश्रयरोन मुक्ति, कपाय मुक्ति किलमुक्तिरेव ।
"हरिभद्रसूरि"

अर्थ—मुक्ति न तो दिगम्वरत्व मे है न श्वेताम्वरत्व मे, न तर्कवाद मे और न तत्त्ववाद मे न एक पक्ष की सेवा करने मे है। वास्तव मे क्रोधादि कपायो मे मुक्त होना ही मच्चा मोक्ष है।

न तद्भासयते सूर्यो, न शशाङ्को न पावक ।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते, तद्धाम परम मम ।। "गीता"

अथ—जिम परमपद को न तो सूर्य प्रकाशित कर मकता है, न चन्द्रमा और न अग्नि तथा जहा जाकर मनुष्य पुन ममार मे नही लौटता, वह मेरा परम धाम याने मोक्ष है।

धर्माख्याने श्मशाने च, रोगिणां या मतिर्भवेत्,
सा चेत् सर्वदा तिष्ठेत, को न मुच्येत बन्धनात् ।

अर्थ—धर्म कथन मे, श्मशान मे तथा रुग्णावस्था मे जो बुद्धि होती है, वह यदि सर्वदा बनी रहे तो कौन बन्ध से मुक्त नही हो सकता ?

— पद्य —

ढूढा सब जहान मे, पाया पता तेरा नही ।
जब पता तेरा मिला, तो अब पता मेरा नही ॥

खुदी जब तक रहे इन्सान मे, उसको नही पाता ।
यह पर्दा उठ गया दिल से, तो वह पर्दानशी पाया ॥

—सूक्ति—

काय से मुक्त होने पर जो आनन्द आता है, मुक्त होने का आनन्द उससे अनन्त गुण बढकर होता है ।

मोक्ष पाने पर आत्मा अपने परमात्म स्वरूप मे समा जाता है ।

साधनाओ का जहाँ अन्त होता है, मोक्ष का आरभ वही से होता है ।

साध्य, साधन एव सिद्धि का समन्वय ही सच्चा मोक्ष है ।

— — — —

मानव

पात्रे त्यागी गुणे रागी, भोगी परिजनै सह ।
शास्त्रे बोद्धा रणे योद्धा, पुरुष पञ्चलक्षण ।।

"सुभाषित"

अर्थ—पात्र को देने वाला, गुणो का अनुरागी, परिजनो के साथ वस्तु का उपभोग करने वाला, शास्त्रज्ञ, युद्ध करने मे वीर, पुरुष के ये पाच लक्षण हैं ।

स्वर्ण स्थाले क्षिपतिस रज', पाद शौच विधत्त,
पीयूषेण प्रवरकरिण, वाहयत्येन्धभारम् ।
चिन्तारत्न विकरति कराद् वायसोड्डायनार्थ,
यो दुष्प्राप्य गमयति मुधा, मर्त्य जन्म प्रमत्त ।।

"सिंदूर प्रकरण"

अर्थ—जो प्रमत्त व्यक्ति आलस्य के वश, दुर्लभ मनुष्य जन्म को व्यर्थ गवा रहा है, वह अज्ञानी नर सोने के थाल मे मिट्टी भर रहा है, अमृत से पैर धो रहा है, श्रेष्ठ हाथी पर ईन्धन ढो रहा है और चिन्तामणि रत्न को काग उडाने मे फेंक रहा है ।

देवा विसय पसत्था, नेरयिया विविह दुक्ख सतत्ता ।
तिरिया विवेक विगला, मणुयाण धम्म सामग्गी ।।

अर्थ—देवगण विषयो मे लीन है और नारकीय विविध दु खो से सतप्त हैं । तिर्यंच् विवेक-विकल है । केवल मनुष्यो को धर्म सामग्री प्राप्त है ।

धर्माख्याने श्मशाने च, रोगिणां या मतिर्भवेत्,
सा चेत् सर्वदा तिष्ठेत्, को न मुच्येत बन्धनात् ।

अर्थ—धर्म कथन में, श्मशान में तथा रुग्णावस्था में जो बुद्धि होती है, वह यदि सर्वदा बनी रहे तो कौन बन्ध से मुक्त नहीं हो सकता ?

— पद्य —

ढूंढा सब जहान में पाया पता तेरा नहीं ।
जब पता तेरा मिला, तो अब पता मेरा नहीं ।।

खुदी जब तक रहे इन्सान में, उसको नहीं पाता ।
यह पर्दा उठ गया दिल से, तो वह पर्दानशीं पाया ।।

—सूक्ति—

कार्य से मुक्त होने पर जो आनन्द आता है, मुक्त होने का आनन्द उससे अनन्त गुण बढकर होता है ।

मोक्ष पाने पर आत्मा अपने परमात्म स्वरूप में समा जाता है ।

साधनाओं का जहाँ अन्त होता है, मोक्ष का आरंभ वहीं से होता है ।

साध्य, साधन एवं सिद्धि का समन्वय ही सच्चा मोक्ष है ।

पात्रे त्यागी गुणे रागी, भोगी परिजनै सह ।
शास्त्रे बोद्धा रणे योद्धा, पुरुष पञ्चलक्षण ।।

"सुभाषित"

अर्थ—पात्र को देने वाला, गुणो का अनुरागी, परिजनो के साथ वस्तु का उपभोग करने वाला, शास्त्रज्ञ, युद्ध करने में वीर, पुरुप के ये पाच लक्षण है ।

स्वर्ण स्थाले क्षिपतिस रज, पाद शौच विधत्त,
पीयूषेण प्रवरकरिण, वाहयत्येन्धभारम् ।
चिन्तारत्न विकरति कराद् वायसोड्डायनार्थ,
यो दुष्प्राप्य गमयति मुधा, मर्त्य जन्म प्रमत्त ।।

"सिंदूर प्रकरण"

अर्थ—जो प्रमत्त व्यक्ति आलस्य के वश, दुर्लभ मनुष्य जन्म को व्यर्थ गवा रहा है, वह अज्ञानी नर सोने के थाल मे मिट्टी भर रहा है, अमृत से पैर धो रहा है, श्रेष्ठ हाथी पर ईन्धन ढो रहा है और चिन्तामणि रत्न को काग उडाने मे फेंक रहा है ।

देवा विसय पसत्था, नेरयिया विविह दुक्ख सतत्ता ।
तिरिया विवेक विगला, मणुयाण धम्म सामग्गी ।।

अर्थ—देवगण विपयो मे लीन है और नारकीय विविध दु खो से सतप्त है । तिर्यंच् विवेक-विकल है । केवल मनुष्यो को धर्म सामग्री प्राप्त है ।

भुक्तं स्वादुरसं द्विजेन्द्र भवने श्री ब्रह्मदत्तस्ययत्,
क्षेत्रेऽस्मिन् भरतेऽखिले प्रतिगृहे भुक्त्वा पुनस्तद्गृहे ।
जातं तस्य यथा मनोऽभिलषितं तद् भोजनं दुर्लभं,
संसारे भ्रमतः पुनर्नरभवो जन्तोस्तथा दुर्लभः ।।

अर्थ—द्विजेन्द्र श्री ब्रह्मदत्त के भवन में जो अत्यन्त स्वादिष्ट रस युक्त भोजन किया, इस सारे भरत क्षेत्र के प्रतिगृह में भोजन करके फिर उसके घर में वह मनोनुकूल भोजन जैसे दुर्लभ है, वैसे ही सारे संसार में भ्रमण करते हुए प्राणी को पुनः नरभव की प्राप्ति दुर्लभ है ।

नरेषु चक्री त्रिदशेषु वज्री, मृगेषु सिंहः, प्रशमो व्रतेषु,
मतो महीभृत्सु सुवर्ण शैलो भवेषु मानुष्यभवः प्रधानम् ।

अर्थ—मनुष्यों में चक्रवर्ती, देवों में इन्द्र, मृगों में सिंह, व्रतों में शान्ति, पहाड़ों में सुमेरु और भवों में मनुष्य भव प्रधान है ।

पूरीषं सूकरः पूर्वं ततो मदनं गर्दभः, ।
जरा जरद्गवः पश्चात्, कदापि न पुमान् पुमान् ।।

अर्थ—पहले विष्ठा भोजी सूअर, बाद में कामी गधा, पश्चात् बूढ़ा बैल किन्तु मनुष्य कभी मनुष्य नहीं हो सकता ।

बाल्ये मूत्र पुरीषेण, यौवने रति चेष्टितैः ।
वार्धकके श्वास-कासाद्यै जनो जातु न लज्जते ।।

अर्थ—बाल्यावस्था में मूत्र और विष्ठा से, जवानी में रति-काम चेष्टाओं से और बुढ़ापे में श्वास और खासी आदि से पीड़ित होकर भी मनुष्य शर्म नहीं करता है ।

सूचोभिरग्निवर्णाभि, भिन्नस्य प्रतिरोमयत् ।
दु ख नरस्याष्टगुण, तद्भवेद् गर्भवासिन ।।

अर्थ—अग्नि वर्ण वाली सूई से प्रतिरोम छेदे जाने पर जो दु ख मनुष्य को होता है, उससे आठ गुणा वढकर गर्भवास मे होता है ।

धन प्राप्य दत्त मया नो सुपात्रे, अधीत न शास्त्र मयाभूरिबुद्धौ ।
तप सद्बले नोकृत नोपवासे, गत हा, गत हा, गत हा गत हा ।।

अर्थ—धन पाकर हमने सुपात्र मे नही दिया, वहुत बुद्धि के होने पर भी मैने शास्त्र का अध्ययन नही किया, सद्बल होने पर भी तप और उपवास नही किया, इस तरह हाय ! मेरा सव कुछ चला गया ।

सोपानभूत मोक्षस्य, मानुष्य प्राप्य दुर्लभम् ।
यस्तारयति नात्मान, तस्मात् पापतरोऽत्रक ।

अर्थ—जो मोक्ष की सीढी रूप अत्यन्त दुर्लभ मनुष्य शरीर पाकर भी अपना कल्याण नही करता, उससे वढकर यहा पापी और कौन है ?

-- पद्य -

वडे भाग मानुप तन पावा, सुर दुर्लभ सव ग्रन्थहि गावा ।

आभूपण नर देह का, एक पर उपकार है ।
हार को भूपण कहे, उस बुद्धि को धिक्कार है ।

जिसको न निज गौरव तथा, निज देश का अभिमान है ।
वह नर नही पशु नर निरा है, औरमृतक समान है ।

जो फरिश्ते करते है, कर सकता इन्सान भी।
पर फरिश्तो से न हो, जो काम है इन्सान का।

हो न कुछ इन्सानियत, इन्सा मे फिर इन्सान क्या।
ऐ जफर गर्चे हुआ जाहिर मे वह इन्सा की शक्ल॥

दर्दे दिल पासेवफा, जजबए-ईमा होना।
आदमीयत है यही, औ यही इन्सा होना॥

याचना

तावत् गुणा गुरुत्वच, यावन्नार्थयते परम् ।
अर्थी चेत् पुरुषो जात , क्वगुणा , क्वच् गौरवम् ॥
"ब्रह्मपुराण"

अर्थ—मनुष्य के गुण और गौरव तभी तक सुरक्षित रहते हैं, जब तक कि वह किसी से कुछ याचना नही करता। याचक बन जाने पर कहाँ गौरव और गुण ? अर्थात् कुछ भी नही रहते ।

दारिद्रस्य परामूर्ति, यान्चा न द्रविणाल्पता ।
अपि कौपीनवान् शभुस्तथापि परमेश्वर ॥ 'भोजप्रबन्ध'

अर्थ—दरिद्रा की बडी मूर्ति गरीबी, धन की कमी नहीं याचना-माँगना है। शिवजी कौपीनधारी होने पर भी परमेश्वर माने जाते है।

गतिभ्रशो, मुखेदैन्य गात्रे स्वेदो विवर्णता ।
मरणेयानि चिन्हानि, तानि चिह्नानि याचके ॥

अर्थ—याचक की गति गडबडा जाती है, मुख पर दीनता छा जाती है, शरीर मे पसीना आ जाता हैं और वर्ण-रग बदल जाता है। मरने के जो चिन्ह होते है, वे सभी चिन्ह याचक मे दिखाई देने लगते है।

जात वशे भुवन विदिते पुष्करावर्तकाना,
जानामित्वा प्रकृति पुरुष कामरूप मघोन. ।
तेनार्ऽथित्व त्वयि विधिवशाद्दूर बधुर्गतोऽह,
यान्चा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा । 'मेघदूत'

अर्थ—हे मेघ ! तुम विश्व विख्यात पुष्कर और आवर्तक के वश मे उत्पन्न

— पद्य —

रहिमन वे नर मरिचुके, जो कहु मागन जाहि ।
उनते पहले वे मुए, जिन मुख निकसत नाहि ॥

रहिमन याचकता गहे बड़े छोट ह्वै जात ।
नारायण को हू भयो, बावन अंगुर गात ॥ "रहीम"

बुरो प्रीति को पथ, बुरो जंगल को बासो ।
बुरो नार को नेह, बुरो मूरख सो हासो ॥
बुरी सूम की सेव, बुरो भगिनीघर भाई ।
बुरी कुलच्छन नार सास घर बुरो जमाई ॥
बुरो पेट पपाल है, बुरो युद्ध से भागनो ।
गग कहे अकबर सुनो, सबसे बुरो है मागनो ॥ 'गग'

आब गया आदर गया, नैनन गया सनेहु ।
ये तीनो तब ही गए, जब ही कहा कछु देहु ॥ 'कबीर"

बिन मागे सो दूध बराबर, मागो मिलै सो पानी ।
कहै कबीर सो रक्त बराबर, जामे खीचा तानी ॥

———

स्नेह या प्रेम

दर्शने स्पर्शने वापि, श्रवणे भाषणेऽपि वा।
हृदयस्य द्रवत्व यत् तत्प्रेम इति कथ्यते ॥

अर्थ—देखने मे या छूने मे, सुनने या बोलने मे हृदय का पिघलना ही प्रेम कहाता है।

ददाति प्रतिगृह्णाति, गुह्यमाख्याति पृच्छति।
भुङ्क्ते भोजयते चैव षड्विध प्रीतिलक्षणम् ॥

अर्थ—देना और लेना, गुप्त बातें कहना और सुनना खाना और खिलाना, प्रेम के ये छ लक्षण हैं।

प्रेम सत्य तयोरेव, ययोर्योग वियोगयो।
वत्सरा वासरीयन्ति, वत्सरीयन्ति वासरा ॥

"चन्द्रचरित्र"

अर्थ—वास्तविक प्रेम उन्ही दोनो का है जिनके मिलने और बिछुड़ने मे वर्ष दिन के समान और दिन वर्ष के समान प्रतीत होने लगते हैं।

अहो! साहजिक प्रेम दूरादपि विराजते।
चकोर नयन द्वन्द्व, माह्लादयति चन्द्रमा ॥

अर्थ—अहो! सहज प्रेम दूर मे भी चमक उठता है, चकोर के नयन युगल को चन्द्रमा कितनी दूर से आह्लादित करता है।

अवज्ञा त्रुटितं प्रेम, सुसधातु क ईश्वर ।
सन्धितं स्फुटितं याति, लाक्षालेपेन मौक्तिकम् ।।

अर्थ—अपमान से टूटे हुए प्रेम को कौन जोड़ सकता है ? फूटा मोती लाख के लेप से नही जुड़ता ।

पद्य

प्रेम छिपाये ना छिपे, जाघट परगट होय ।
जो पै मुख बोले नही, नैन देत है रोय ।।   "कबीर"

प्रीति सीखिये ईख ते, पोर पोर रस खान ।
जहा गाठ तह रस नही, यही नीति की बान ।

जैसो बन्धन प्रेम को, तैसो बध न और ।
काठहि भेदे कमल को, छेद न निकले भौर ।।   'वृन्द'

प्रीति करै सो बावरो, कर तोडे सो क्रूर ।
प्रीति करी आजन्म लो, लेय निभै सो शूर ।।

चाखा चाहे प्रेम रस, राखा चाहे मान ।
एक म्यान मे खड्ग दो, देखा सुना न कान ।।
प्रीति जहा पर्दा नही, पर्दा वहा न प्रीति ।
प्रीति करे पर्दा रखे, है यह रीति कुरीति ।

रहिमन धागा प्रेम का, मत तोडहु तटकाय ।
टूटे से फिर ना मिले, मिलत गाठ पडि जाय ।।

मुहब्बत नही आग से खेलना है, लगाना पडेगा, बुझाना पडेगा ।

"आरजू"

यह प्रेम को पथ कराल महा, तलवार की धार पैंधावनो है ।

"बोधा"

प्रेम पयोनिधि मे धसिके, हसिके कढ़िवो पुनि खेल नही है ।

पद्माकर

— सूक्ति —

प्रेम के वश मे शत्रु भी मित्र वन जाते हैं ।
प्रेम ससार की अनमोल वस्तु है ।

जो शुद्ध प्रेम करना नही जानता, वह मानव नही ।

प्रेम का प्रभाव सब पर पडता है ।

२६

मूर्ख

मूर्ख—

मूर्खत्व हि सखे ! ममापि रुचित, यस्मिन् यदष्टौगुणा,
निश्चिन्तो बहुभोजनोऽत्रपमना नक्त-दिवाशायक ।
कार्याकार्य विचारणान्ध बधिरो मानापमाने सम
प्रायेणामयवर्जितो दृढवपु मूर्ख मुख जीवति ।।

अर्थ—हे मित्र ! मुझ भी मूर्खता अच्छी लगती है। जिसमे आठ गुण है। (१) मूर्ख व्यक्ति निश्चिन्त रहता है (२) बहुत खाता है (३) उसके लाज शर्म नही होती, (४) वह रात दिन पडा रहता है, (५) कार्य-अकार्य का विचार करने मे अन्ध-बधिर होता है, (६) मान अपमान मे एक सा होता है (७) नीरोग होता है, (८) मजबूत शरीर वाला होता है, अत वह सुख से जीता है।

गत न शोचामि कृत न मन्ये, खाद न गच्छामि हस न जल्पे ।
द्वाभ्या तृतीयो न भवामि राजन् किं कारण भोज भवामि मूढ ।।

अर्थ—मै गए को नही सोचता और किये को नही मानता, खाते हुए नही चलता और हसते हुए नही बोलता हूँ। मै दो के बीच मे तीसरा नही बनता फिर क्या कारण कि हे भोज ! मैं मूढ होऊ ?

शक्यो वारयितु जलेन हुतभुक् छत्रेण सूर्यातपो,
नागेन्द्रो निशिताङ्कुशेन ममदो दण्डेनगो-गर्दभौ।
व्याधिर्भेषजसग्रहश्च विविधैर्मन्त्रप्रयोगैर्विष,
सर्वस्यौषधमस्ति, शास्त्रविहित, मूर्खस्य नास्त्यौषधम ।।

भर्तृहरि-नीतिशतक

अर्थ—अग्नि को जल से, धूप को छत्ते से, मस्त हाथी को तीखे अकुश से, गाय एव गधे को डण्डे से, बीमारी को औपधियो मे तथा विप को विविध मन्त्रो के प्रयोग से दूर किया जा सकता है। शास्त्रो मे सबकी दवाइया बताई गयी है, लेकिन मूर्ख की कोई दवा नही बताई गई।

नमति फलिनो वृक्षा नमन्ति गुणिनोजनाः।
शुष्क काष्ठश्च मूर्खाश्च न नमन्ति कदाचन् ।।

अर्थ—फल वाले वृक्ष झुकते है और गुणीजन भी झुकते है किन्तु सूखे काठ और मूर्ख कभी भी नही झुकते।

अजातमृत मूर्खाणा, वरमाद्यौ न चान्तिम ।
सकृद् खकरावाद्या, वन्तिमस्तु पदे पदे ।।

अथ – नही उत्पन्न, मृत और मूर्ख इनमे पहला दोनो ठीक है, अन्तिम नही। आदि के दोनो तो एकबार ही दु ख देने वाले होते है, किन्तु अन्तिम तो पद पद मे दु ख देता है।

वर दरिद्रोऽपि विचक्षणो नरो, नैवार्थ युक्तोऽपि सुशास्त्रवर्जित ।
विचक्षण कार्पटिकोऽपि शोभते, न चापि मूर्ख कनकैरलकृत ।।

अथ विद्वान् दरिद्र भी श्रेष्ठ है किन्तु अथ युक्त भी सुशास्त्र रहित श्रेष्ठ नही है विचक्षण कौडी वाला (भिखारी) भी शोभिता है किन्तु स्वर्णालकृत मूख नही।

— पद्य —

बिन तेड्यो घर जाय, बिन बतलायो बोले,
बिन मौके हग देत, बिन पर्योजन डोले।
बिना दिया सम्मान जा बैठे आगेरो,
बैठे अग भिडाय फिर फिर खावे फेरो।
चाले रस्ते ग्रावतो, गुप्त बात चौटे कहे,
बैताल कहे विक्रम सुनो 'मूरख' छाना किम रहे॥
अति घसिया सू ऊपजे, चन्दन में भी आग।
ज्यादा क्रोध चढावनो, मूरख की है जात॥
बुद्धि बिन करे व्यापार, दृष्टि बिन नाव चलावे।
सुर बिन गावे गीत, अर्थ बिन नाच नचावे।
गुण बिन जाय विदेश, अक्ल, बिन चतुर कहावे।
बल बिन बाधे युद्ध, होस बिन हेत जनावे॥
बिन इच्छा करे बिन देखी कहे जो बात,
बेताल कहे विक्रम सुनो, यह है मूर्ख की जात॥

दान

तप पर कृतयुग, त्रेताया ज्ञानमुच्यते ।
द्वापरे यज्ञ मेवाहु—, र्दानमेक कलौयुगे ।। मनु०

अर्थ—सत्य युग मे तप, त्रेता युग मे ज्ञान, द्वापर युग मे यज्ञ और कलियुग मे दान उत्कृष्ट माना गया है,

कोन याति वशलोके, मुखे पिण्डेन पूरित ।
मृदङ्गोमुख लेपेन, करोति मधुर ध्वनिम् ।।

अर्थ—मुँह मे पिण्ड देने से कौन वश मे नही होता ? मृदग भी मुख पर लेप लगाने से मधुर बोलने लगता है ।

दान प्रिय वाकसहित, ज्ञानमार्जव क्षमान्वित शौर्यम् ।
वित्त त्याग नियुक्त, दुर्लभमेतत् चतुष्टय लोके ।।

अर्थ—मधुर वचन के सग दान, सरलता युक्त ज्ञान, क्षमा युक्त शौर्य, एव त्यागयुक्त धन ये चार इस लोक मे दुर्लभ है ।

श्रद्धया देय, अश्रद्धयादेय, श्रिया देय ।
ह्रिया देय, भियादेय सविदा देयम् ।।

"तैत्तरीय उपनिषद"

अर्थ—श्रद्धा से दान दो, अश्रद्धा से भी दो, अपनी सम्पत्ति से दो, लोक लाज से दो, भय से दो सविद समझदारी से दो ।

अनुकूले विधौदेय, यत पूरयिता हरि ।
प्रतिकूले विधौदग, यत मर्व हरिष्यति ।।

अर्थ– भाग्य की अनुकूलता में दान देना चाहिये, कारण ईश्वर मब कुछ पूरा करने वाले है। प्रतिकूल भाग्य में भी दान देना चाहिये, क्योंकि ईश कहीं सब हरण कर लेगा।

दान ख्याति कर मदाहितकर, ससार सौख्याकर।
नृणा प्रीतिकर गुणाश्रयकर, लक्ष्मीकर किंकरम् ।
स्वर्गावामकर मलक्षयकर निर्वाण सपति कर
वर्णायुर्बल बुद्धि वर्धनकर दान प्रदेय बुधै ।।

अर्थ—दान प्रसिद्ध करने वाला सदा हितकारी ससार मे सौख्य का खजाना मनुष्यों का प्रेमकारी, गुणाश्रय करने वाला, लक्ष्मी देने वाला तथा सेवक देने वाला, स्वर्ग का आवास करने वाला, मल को नष्ट करने वाला, मोक्ष सम्पदा को करने वाला, वर्ण आयु बल एवं बुद्धि को बढाने वाला है। अत बुधजन को दान देना चाहिये ।

तावत् प्रीतिर्भवल्लोके, यावद्दान प्रदीयते ।
वत्स क्षीर क्षय दृष्ट्वा, परित्यजति मातरम् ।।

अर्थ—लोक मे जब तक दान दिया जाता है, तभी तक प्रीति रहती है। दूध का नाश देखकर बछडा अपनी माता को छोड देता है।

दरिद्रान्भर कौन्तेय, मा प्रयच्छेश्वरेधनम् ।
व्याधितस्यौषध पथ्य, नीरुजस्य किमौषधै ।।

अर्थ—हे कौन्तेय! दरिद्रो का भरण करो, धनवानो को धन नही दो। रोगी के लिए औषध और पथ्य की आवश्यकता है नीरोगी को औषध से क्या ?

मरुस्थल्या यथावृष्टि, क्षुधार्ते भोजन तथा ।
दरिद्रे दीयते दान, सफल पाण्डुनन्दन ।।

अर्थ—हे पाण्डुनन्दन! मरुभूमि मे जैसे वर्षा प्यारी होती है, वैसे भूखो को भोजन भी प्यारा लगता है। दरिद्र मे दिया हुआ दान ही सफल होता है ।

दानेन भोगा सुलभाभवन्ति, दानेन वैराण्यपि यान्ति नाशम् ।
दानेन भूतानि वशीभवन्ति, तस्माद्धि दान सतत प्रदेयम् ।।

अर्थ—दान से भोग सुलभ होता है और दान के द्वारा वैर विरोध भी नष्ट हो जाते हैं। दान से जीव वश मे होते है। अत दान सतत देना चाहिये।

अर्था पादरजोऽमा गिरिनदी वेगोपम यौवन,
आयुष्य जललोल बिन्दु चपल, फेनोपम जीवनम् ।
दान यो न करोति निश्चलमति, भोग न भुंक्ते चय,
पश्चात्तापयुता जरा परिगत, शोकाग्निना दह्यते ।।

अर्थ—धन पैर की धूल के समान, पहाडी नदी के वेग की तरह जवानी, सुन्दर चपल बिन्दु की तरह आयु, फेन के समान जीवन, ऐसी स्थिति म जो दृढमन से दान नही करता और भोग नही भोगता वही बुढापा आने पर पश्चाताप करने शोकाग्नि मे जलता है।

दातव्यमिति यद्दान दीयतेऽनुपकारिणे ।
देशे काले च पात्रे च तद्दान सात्विक स्मृतम् ।।

अर्थ—जो दान देना है, वह अनुपकारी का देना चाहिये। देश काल और पात्र के ठीक होने पर जो दान दिया जाता है, वह सात्विक दान कहा गया है।

कुपात्र दानाच्च भवेद्दरिद्रो, दारिद्र्यदोषेण करोति पापम् ।
पाप प्रभावान्नरक प्रयाति, पुनर्दरिद्र पुनरेवरोगी ।।

अर्थ—कुपात्र दान से प्राणी दरिद्र होता है और दरिद्रता के दोष से पाप करता है तथा पाप के प्रभाव से नरक जाता है और फिर दरिद्र और रोगी होता है ।

व्याजेस्याद् द्विगुण वित्त, व्यवसाये चतुर्गुणम् ।
क्षेत्रेशतगुण प्रोक्त, पात्रेऽनन्त गुण स्मृतम् ।।

अर्थ—धन व्याज मे देने से दुगुणा, व्यापार मे देने से चौगुणा खेत मे देने से सौ गुणा और सुपात्र मे देने से अनन्त गुण कहा गया है ।

— पद्य —

दीन को दीजिए होत दया अरु, मित्र को दीजिए प्रीति बढावे ।
सेवक को दीजिए सेवा करे अरु शाह को दीजिए आदर पावे ।।
शत्रु को दीजिए वैर रहे नहिं, भाट को दीजिए कीर्ति को गावे ।
अभय सुपात्र मोक्ष के कारण, हाथ दियो 'मन' वृथा न जावे ।।

या धन की गति तीन है, दान भोग अरुनाश ।
दान भोग मे ना लगे, तो निश्चय होत विनाश ।।

जोड गया शिर फोड गया, गाड गया सो गवा गया ।
खाय गया सो खो गया, दे गया सो ले गया ।।

तुलसी जग मे आय के, कर दीजे दो काम ।
देने को टुकडा भला ! लेने को हरिनाम ।।

जननी जने तो ऐसा जन, के दाता के शूर ।
नही तो रहीजे वाझडी, मती गमाजे नूर ।।

पानी वाढे नाव मे, घर मे वाढे दाम ।
दोनो हाथ ऊलीचिए, यही सयानो काम ।।
चीडी चोच भर ले गयी, नदी न घटियो नीर ।
दान दिये धन ना घटे कह गए दास कबीर ।।

दे तो भावे भावना, लेतो करे सतोष ।
वीर कहे सुन गोयमा ! दोनो जावे मोक्ष ।।

एरन की चोरी करे, दे सुई का दान ।
ऊपर चढि के देखता, कब आये विमान ।।

दुनिया मे दाता घणा, आशा हित दे दान ।
"खूब" मोक्ष के हित दे, ते नर विरला जान ।।

"खूब" दान चौडे करे, अपनी महिमा काज ।
टुकडा भी देवे नही जो, द्वार खडा मोहताज ।।

शरीर सुख ने सपदा, विद्या ने वरनार ।
पूरवल्ला दत्ताव विना, भाग्या मिले न चार ।।

———

३१

भय

सत्त भय ट्ठाणे पण्णत्ते, तजहा-इहलोक भए,
परलोग भए, आदाण भए, अकम्हाभए, वेयणा भए
मरण भए, अमिलोग भए। 'स्थानाग''

अर्थ—सात प्रकार के भय है-इहलोक भय, परलोक भय आदान भय, अकस्मात् भय, वेदना भय, मरणभय अश्लोक-अपयश भय।

"पर्वताना भय वज्रात् पादपाना भय वातात्।"

अर्थ—पर्वतो को वज्र से भय है, और वृक्षो को वायु से भय है।

तावद् भयाद्भेतव्य यावद्भयमनागतम्।
आगत तु भय वीक्ष्य नर कुर्याद्-यथोचितम्॥

अर्थ—जब तक भय पास न आया हो, तभी तक उससे डरना चाहिये। किन्तु भय को आया देखकर मनुष्य को उसका यथोचित प्रतीकार करना चाहिये।

उत्थायोत्थाय वोद्धव्य, महद्‌भयमुपस्थितम् ।
मरणव्याधिशोकाना, किमद्य निपतिष्यति ।।

अथ—उठ उठ कर जानना चाहिये कि आज वडा भय आने वाला है जिसमे मरण, व्याधि और शोक मे कौन आयेगा ?

भय सत्रस्त मनसा हस्त पादादिका क्रिया ।
प्रवर्तन्ते न वाणी च, वेपथुश्चाधिको भवेत् ।।

अर्थ—भय से डरे व्यक्तियो की जीभ और हाथ पैर आदि अवयवो की क्रियाये वन्द हो जाती हैं तथा अधिक कपन होने लगता है ।

भीतो तव सजम पिहुमुएज्जा ।
भीतोय भर न नित्थरेज्जा ।। "प्र० व्याक०"

अर्थ—भयग्रस्त मनुप्य तप और सयम की साधना छोड वैठता है और न किमी वडे भार को निभा मकता है ।

ण भाइयव्व भीत खु भया अइति लहुय ।

अर्थ—भय से डरना नही चाहिये । भय ग्रस्त के पाम भय शीघ्र आते है ।

"भीतो अवितिज्जओ मणुस्सो ।" "प्र० व्याक०"

अथ—भयभीत मनुष्य किसी का सहायक नही होता ।

— पद्य —

भय विनु भाव न उपजे, भय विनु प्रीति न होय ।
जव हृदय ते भय गया निर्भय होय न कोय ।। कवीर

भयते भक्ति सब करे, भयते पूजा होय ।
भय पारस है जीवको, निर्भय होय न कोय ।

— सूक्ति —

भय का भय नही रहे तो मानवता को पशुता या दानवता मे बदलते कुछ भी देर नही लगे ।
भय नही तो निर्भयता कैसे?
सीमाबद्ध भय से समाज को लाभ ही मिलता है ।

सबसे बडा भय मृत्यु का है जिसके आगे किसी का कुछ नही चलता।

३२

चिन्ता

चिन्तया नश्यते रूप, चिन्तया नश्यते वलम् ।
चिन्तया नश्यते ज्ञान, व्याधिर्भवति चिन्तया ।।

अर्थ—चिन्ता से रूप, वल और ज्ञान का नाश होता है एव रोग की उत्पत्ति होती है।

चिता चिन्ता समा प्रोक्ता, विन्दु मात्र विशेषत ।
चिता दहति निर्जीव, चिन्ता सजीवमप्यहो ।।

अर्थ—चिता और चिंता समान हैं, केवल विन्दु मात्र का अन्तर है। चिता तो मुर्दे को जलाती है किन्तु चिन्ता सजीव को भी भस्म कर देती है।

उत्तमाध्यात्म चिन्ता च, मोह चिन्ता च मध्यमा ।
अधमा काम चिन्ता च पर चिन्ताधमाधमा ।।

अर्थ—अध्यात्म चिन्ता उत्तम है, मोह की चिन्ता मध्यम कामभोग की चिंता अधम और दूसरो की चिन्ता अधमाधम है।

चिन्ता जरा मनुष्याणा मनश्वा वाजिना जरा ।
असभोगो जरा स्त्रीणा, वस्त्राणामातपो जरा ।।

अर्थ—मनुष्यो के लिये चिन्ता जरा-बुढ़ापा है, घोडो के लिए नही घूमना जरा है, स्त्रियो के लिए असभोग जरा है और वस्त्रो के लिए धूप जरा है।

चिन्ता सम नास्ति शरीर शोषणम् ।।

अर्थ—चिन्ता के समान शरीर का शोषण करने वाली दूसरी कोई वस्तु नही है।

को वा ज्वर ? प्राग भृता हि चिन्ता" ,

अर्थ—जीवो के शरीर मे ज्वर क्या है? चिन्ता ।

— पद्य —

मुर्दे को भी मिलता है लकडी कपडा आग ।
जीवित हो चिन्ता करे, ताको बडो अभाग ।।

क्या तवगर क्या गुनी क्या पीर और क्या वालका ।
सबके दिल मे फिक्र है, दिन रात आटे दाल का ।

सोचिअ गृही जो मोहवस, करहि करम पथ त्याग ।
सोचिअ जती प्रपच रत, विगत विवेक विराग । 'रामचरित मानस

— सूक्ति —

जिस शरीर मे चिन्ता घुसती है, उसका नाश करके ही छोडती है

हम चाहे जितनी भी चिन्ता से बचने की कोशिश करे, किन्तु यह आये बिना नही रहती ।

वर्षो का पाला पोसा शरीर, चिन्ता से क्षण पल मे नि सत्व बन जाता है ।

चिन्ता करने से कोई लाभ नही होता, उल्टे सर्वनाश उपस्थित हो जाता है ।

पण्डित या विद्वान्

प्रस्ताव सदृश वाक्य प्रभाव सदृश प्रियम् ।
आत्म शक्ति समकोप, यो जानातिस पण्डित ॥ "चाणक्य"

अर्थ—जो प्रस्ताव के सदृश वाक्य, प्रभाव के अनुकूल प्रिय और आत्मबल के सदृश क्रोध को जानता है, वह पण्डित है ।

यस्य सर्वे समारम्भा काम सकल्प वर्जिता ।
ज्ञानाग्निदग्ध कर्माणि, तमाहु पण्डित बुधा ॥ गीता

अर्थ—जिसके सभी आरम्भ (कार्य) काम-सकल्प रहित हैं, एव जिसने ज्ञानाग्नि मे कर्मों को जला डाला है उसको बुधजनो ने पण्डित कहा है ।

न हृष्यत्यात्म सम्माने नावमानेन तप्यते ।
गाङ्गो ह्रदइवाक्षोभ्यो, य स पण्डित उच्यते । "विदुर्नीति"

अर्थ—जो अपने सम्मान मे नही फूलता, अपमान मे नही जलता, गगा ह्रद की तरह सदा अक्षुब्ध रहता है वही पण्डित कहाता है ।

मातृवत परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत् ।
आत्मवत सर्वभूतेषु य पश्यतिस पण्डित ॥

अर्थ—जो परस्त्रियो मे मातृभाव, परद्रव्यो मे मिट्टी का भाव तथा सभी प्राणियो मे आत्मभाव से देखता है, वही पण्डित है ।

विद्या विनय सम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।।
शुनि चैव श्वपाकेच, पण्डिता समदर्शिन ।।

अर्थ—विद्या विनय सम्पन्न ब्राह्मण मे, गाय, हाथी कुत्ता और चाण्डाल मे समान दृष्टि से देखने वाले ही पण्डित है।

निश्चित्य य प्रक्रमते, नान्तर्वमति कर्मण ।
अवन्ध्यकालो वश्यात्मा, सवै पण्डित उच्यते ।।

अर्थ—जो निश्चय पूर्वक कार्य को करता है, कार्य के बीच मे नही रुकता, समय को नही खोता और आत्मा को वश मे रखता है, वही पण्डित कहलाता है।

सत्य तपो ज्ञानमहिंसिता च, विद्वत् प्रणामश्च सुशीलता च ।
एतानियो धारयते स विद्वान्, न केवल यो पठतेस विद्वान् ।।

अर्थ—सत्य, तप, अहिंसकता, विद्वत्प्रणामन और सुशीलता इन गुणो को जो धारण करता है, वही वास्तव मे विद्वान् है, केवल पढने मात्र स कोई विद्वान् नही होता।

हसो विभाति नलिनी दल पुञ्जमध्ये,
सिहो विभाति गिरिगह्वर कन्दरासु ।
जात्यो विभाति तुरगोरण भूमि मध्ये,
विद्वान् विभाति पुरुषेषु विचक्षणेषु ।

अथ—जैसे नलिनी दल पुज के बीच मे हस सुशोभित होता और पर्वत के अध गुफा मे सिंह और रणभूमि के बीच मे जातिमन्त अश्व सुशोभित होते, वैसे विचक्षणो के बीच विद्वान् सुशोभित होते है।

विद्वत्त्वच नृपत्वच, नैव तुल्य कदाचन ।
स्वदेशे पूज्यते राजा, विद्वान् सर्वत्र पूज्यते । पन्चतन्त्र

अर्थ—विद्वत्ता और नृपता कभी समान नही हो सकती, राजा स्वदेश मे पूजित होता है और विद्वान् सर्वत्र पूज्य होते हैं।

— सूक्ति —

सशयो को दूर कर हृदय मे सद्बोध की गहरी जड जमाने वाला ही पण्डित है।

जिसकी वाणी शहद से भी वढकर मधुर और भैषज्यवत् कल्याण-कारी है, वही पण्डित है।

जो ज्ञान दीप के सहारे अविद्या के अन्धकार को मिटाता है, वह पण्डित है।

विनय

विणएण णरो, गधेण चदरा, सोमयाइ रयणियरो ।
महुर रसेण अमय, जणपियत्त लहइ भुवणे ।। 'धमरत्न प्रकरण'

अर्थ—जैसे सुगध के कारण चन्दन, सौम्यता के कारण चन्द्रमा, और मधुरता के कारण सुधा विश्व प्रिय है, ऐसे ही विनय के कारण नर, लोक प्रिय वनता है ।

विणओ जिणसासणे मूल, विणीओ सजओ भवे ।
विणयाओ विप्पमुक्कस्स, कओ धम्मो कओ तवो ।

अर्थ—विनय जिन शासन की जड है, विनीत ही सयत होता है । जो विनय से शून्य हे, उसका क्या धर्म और क्या तप?

विणए ठविज्ज अप्पाण, इच्छतो हियमप्पणो ।
"उत्तराध्ययन"

अर्थ—आत्म हितैषी पुरुष को अपनी आत्मा विनय मे स्थापित करनी चाहिये ।

जम्हा विणयइ कम्म, अट्ठविह चाउरत मोक्खाय ।
तम्हाउ वयति विउ, विणयति विलीणसारा ।।
'स्थानाग'

अर्थ—विनय आठ कर्मो को दूर करता है, उससे चार गति के अन्तरूप मोक्ष की प्राप्ति होती है, इसलिए सर्वज्ञ इसको विनय कहते है ।

विद्या ददाति विनय, विनयाद्याति पात्रताम् ।
पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धना-द्धर्मं तत सुखम् ।।

अर्थ—विद्या विनय को देती है और विनय से पात्रता आती है। पात्रता से धन मिलता है और धन से सुख की प्राप्ति होती है।

— सूक्ति —

विनय के आने पर व्यक्तित्व निखर उठता है।

विनय शील का व्यवहार, जन जन के प्रति आकर्पण उत्पन्न कर लेता है।

विनय गुण के मामने वडे वडे क्रूर हृदय भी झुक जाते है।

आप विनयपूर्ण व्यवहार जानते हैं तो निश्चय ज्ञान का मार आपके पास मे है।

जिम व्यक्ति मे विनय नही है, वह वडे वडे शास्त्रों का जानकार होकर भी कुछ नही जानता।

मानव मे विनय नही तो वह दानव मे कम नही

— पद्य —

झुकता वही है, जिसमे कुछ जान है।
अकडपन तो खास, मुर्दे की पहचान है।

अकडने मे नाहक, को टूटेगा सर।
अगर दर है नीचा, तो झुककर गुजर।।

———

धन

धनवान् वलवाल्लोके, सर्त्र सर्वत्र सर्वदा ।
प्रभुत्व धनमूलहि, राज्ञामप्युपजायते ।।

अर्थ—ससार मे सर्वत्र, सवदा, मभी धन वाले ही वलवान् माने जाते है। राजा लोगों की प्रभुता भी धन मूलक ही मानी जाती है।

धनेन वलवान्-लोके, धनाद्भवति पण्डित ।

अर्थ—धन से ही लोक मे वलवान् होता हे तथा धन से ही पण्डित होता हे।

अर्थेन तु विहीनस्य, पुरुषस्याल्पमेघस ।
क्रिया सर्वा विनश्यन्ति ग्रीष्मे कुसरितोयथा ।।

अर्थ—धनहीन अल्प बुद्धि वाले का सव काम विगड जाता है जैसे गर्मी मे सब छोटी नदिया सुख जाती है।

यस्यार्थास्तस्य मित्राणि,यस्यार्थास्तस्य बान्धवा ।
यस्यार्था सपुमान् लोके, यस्यार्था स हि पण्डित ।।

अर्थ—जिसके पास धन है उसी के लोग मित्र है, उमी के बन्धु है, वही पुरुप और पण्डित भी है।

तानीन्द्रिण्यविकलानि तदेव नाम,
सावुद्धिरप्रतिहता वचन तदेव ।
अर्थोष्मणा विरहित पुरुष स एव,
अन्य क्षणेन भवतीति विचित्रमेतत् ।।

अर्थ—पुरुप के वे ही अविकृत इन्द्रिया हैं, वही नाम है, वही प्रखर वुद्धि है, वही वाणी है, पर जव उसके पास धन की गर्मी नही रहती हे, तो क्षण ही भर मे उसकी दशा वदल जाती है, यह कैसी विचित्रता है ?

वुभूक्षितैर्व्याकरण न भुज्यते, पिपासितै काव्यरसन पीयते
न छन्दसा केन चिदुधृत कुल, हिरण्यमेवार्जय निष्फलागुणा

अर्थ—भूखे व्याकरण नही खाते और प्यासे काव्य रस का पान नही करने, किसी वेदविद् ने कुल का उद्धार नही किया, अत धन का ही उपार्जन करो गुण निष्फल हैं ।

वयोवृद्धास्तपोवृद्धा, ये च वृद्धा वहुश्रुता ।
ते सर्वे धनवृद्धाना, द्वारे तिष्ठन्ति किंकरा ।।

अर्थ—वयोवृद्ध, तपोवृद्ध, और ज्ञान मे वद्ध ये सभी धनवृद्धो के द्वार पर किंकर के रूप मे खडे रहते हैं ।

न नरस्य नरोदासा दासस्त्वर्थस्य भूपते ।
गौरव लाघव वापि धनाधन निवन्धनम् ।।

अर्थ—मनुष्य का मनुष्य दास नही है, हे राजन् । मनुष्य धन का दास है । गुरुता और लघुता सधनता और निधनता मे सम्वन्धित है ।

— पद्य —

लक्ष्मी पुण्याधीन है, मिलती पुण्य पसाय ।
पुण्य क्षीण जब होत है, स्वय छोड चली जाय ।

माया स माया मिले, कर कर लम्बा हाथ ।
तुलसीदास गरीब की, कोई न पूछे बात ॥

कनक कनक ते सौ गुणी, मादकता दिखलाय ।
य खाये बोरात है, वो पाये बोराय ॥

कंकर पत्थर पावधन, पशुधन आधा मित्र ।
भूमि धरा पूरणो गिणे पूरा धन प्रतीत ।

धन की इच्छा सबन की, धन पर सब की प्रीति ।
बिन धन पूछ न हो कही, है यह जग की रीति ॥

धन जिसको उसका सभी यही जगत व्यवहार ।
धन बिना सूना विपिन सम, यह सारा ससार ॥

— सूक्ति —

लोक व्यवहार का मूल, धन है, और जहा धन नही वहा सब सूना है ।

धन के अभाव मे औरो की तो बात ही क्या, अर्द्धांगिनी तक भी ठीक से बात नही करती ।

धन पास मे हो तो ससार की समस्त दुर्लभ वस्तुए हाथ मे समझो ।

शोक

शोक स्थान सहस्राणि, भयस्थान शतानि च ।
दिवसे दिवस मूढ-माविशन्ति न पण्डितम् ।।

अर्थ—शोक के स्थान हजारो तथा भय के सैकडो स्थान है वे प्रतिदिन मूर्खो मे ही घुमते है, पडित मे नही ।

क्व जप क्व तप क्व सुख क्व शम,
क्व यम क्व दम क्व समाधि विधि ।
क्व धन क्व वन क्व बल क्व गुणो,
वत् ! शोकवशस्य नरस्य भवेत् ।।

अर्थ—शोक ग्रस्त मनुष्य के पास जप, तप, सुख, शान्ति यम, दम, समाधि धन, बल, तन एव गुण कहा ? अर्थात् शोक मे सब नष्ट हो जाते है ।

शोको नाशयते धैर्य, शोको नाशयते श्रुतम् ।
शोको नाशयते सर्व, नास्ति शोक समो रिपु ।।

अर्थ शोक धैर्य का नाश करता है शोक श्रुत—शास्त्र ज्ञान को नष्ट करता है । शोक सभी गुणो का नाश करता है । वास्तव मे शोक के समान और कोई दूसरा शत्रु नही है ।

गते शोको न कर्तव्यो, भविष्य नैव चिन्तयेत् ।
वर्तमानेन कालेन, प्रवर्त्तन्ते विचक्षणा ।।

अर्थ —भूत काल का शोक एव भविष्य की चिन्ता नही करनी चाहिये। क्योकि वर्तमान के अनुकूल चलने वाले ही बुद्धिमान् होते है।

अनवाप्य च शोकेन, शरीर चोपतप्यते ।
अमित्राश्च प्रहृष्यन्ति, मास्म शोके मन कृथा ।।

अर्थ—शोक से इच्छित वस्तु की प्राप्ति नही होती, शरीर तप्त-दुखी होता है और शत्रु प्रसन्न होते है अत मन मे शोक मत करो।

नाऽभूम भूमिपतय कतिनाम वारान्,
वारानभूम कतिनाम वय न कीटा ।
तत्सपदो च विपदाच न कोऽपि पात्र-
मेकान्ततस्तदलमङ्ग ! मुदा शुचा वा ।।

"चन्दचरित्र"

अर्थ—हम अनेको वार राजा और कीट हो गए। एकान्त रूप से न तो कोई सम्पत्ति का पात्र है एव न विपत्ति का पात्र ! अत सुख दु ख से क्या ? हमे हर्ष-शोक से बचते रहना चाहिये।

पुरुषस्य विनश्यति येनसुख, वपुरेति कृशत्वमुपेत्य वलम् ।
मृतिमिच्छति मूर्च्छति शोकवशस्त्यजतैनमतस्त्रिविधेन वुधा ।।

अर्थ—जिस शोक से पुरुप का सुख नष्ट होता और शरीर क्षीण होता एव निर्बलता प्राप्त होती है। शोकवश मनुष्य मरना चाहता तथा मुर्च्छित होता है। अत विद्वान्, इसे मन, वचन एव कायिक तीनो योग से छोड दे।

— पद्य —

फिकर सभी को खात है, फिकर सभी का पीर।
फिकर का फाका करे, उसका नाम फकीर।

किसी के काम न आए वह आदमी क्या है ?
जो अपनी फिक्र मे गुजरे, वह जिन्दगी क्या है ॥

—सूक्ति—

शोक से कातरता बढती है और अन्त मे परिणाम दुखद होता है।

आत्मवान् शोक नही करते। वे जानते है कि शोक करने से कोई लाभ नही, उल्टे हानि होती है।

आत्मार्थी ही शोक सागर को सरलता से पार कर जाता है।

———

स्वभाव

कण्टकस्य च तीक्ष्णत्वं, मयूरस्य विचित्रता ।
वर्णाश्च ताम्रचूडाना, स्वभावेन भवन्ति हि ।

अर्थ-- काटो मे तीखापन मयूर मे विचित्रपन और मुर्गो म तरह तरह के रग-स्वभाव से ही होते है ।

कूपोदक वटच्छाया श्यामा स्त्री चेष्टकागृहम् ।
शीतकाले भवेदुष्ण-मुष्णकाले च शीतलम् ।।
—हितोपदेश

अर्थ —कुएँ का पानी, वटवृक्ष की छाया, श्यामास्त्री, ईटो का मकान-ये सर्दी मे गम और गर्मी मे ठड रहते है ।

जले तैल खले गुह्य पात्रे दान मनागपि ।
प्राज्ञे शास्त्र स्वय याति, विस्तार वस्तुशक्तित
—सुभाषितरत्नभाण्डागार

अर्थ—पानी मे तेल, खल पुरुष के पेट मे गुप्त वात, सुपात्र को दिया हुआ थोडा भी दान और पाज्ञ पुरुषो मे शास्त्र ज्ञान ये सब चीजे अपने स्वभाव से तत्काल फैल जाती है ।

न कर्तृत्व न कर्माणि, लोकस्य सृजति प्रभु ।
न कर्म फल संयोग, स्वभावस्तु प्रवर्तते ।।

अर्थ—प्रभु मनुष्य का न तो कर्तृत्व बनाते है और न कर्मों को तथा न कर्म फल का सयोग ही। ये सब स्वभाव से होते है।

निम्नोन्नत वक्ष्यति को जलाना, विचित्र भाव मृग पक्षिणा च ।
माधुर्यमिक्षौ कटुता मरीचे, स्वभावत सर्वमिद हि सिद्धम् ।।

अर्थ—जल का ऊचा नीचा होना, मृग और पक्षियो के विचित्र भाव, इक्षु दण्ड मे मधुरता, मरीच मे कटुता ये सब स्वभाव से ही सिद्ध है।

य स्वभावो हि यस्यास्ति, स नित्य दुरतिक्रम ।
श्वा यदि क्रियते राजा, तत् किं नाश्नान्युपानहम्

— हितोपदेश

अर्थ—जिसका जो स्वभाव है, उसे बदलना कठिन है। कुत्ते को राजा बना दिया जाये तो भी वह जूता खाना नही छोडता।

सर्वस्यहि परीक्ष्यन्ते, स्वभावा नेतरेगुणा ।
अतीत्यहि गुणान् सर्वान् स्वभावो मूर्ध्निवर्तते ।।

अर्थ—सबके स्वभाव का ही परीक्षण होता है दूसरे गुणो को नही। सभी गुणो को दबा कर स्वभाव मस्तक पर जाकर बैठता है।

स्वेदितो मर्दितश्चैव रज्जुभि परिवेष्टित ।
मुक्तो द्वादशभिर्वर्षे श्वपुच्छ प्रकृति गत ।।

—हितोपदेश

अर्थ—पसीना लाई गई, मली गई एव बारह साल तक रज्जु से परिवेष्टित करके रखी गई भी कुत्ते की पूछ छोडते ही स्वभाव को प्राप्त हो गई अर्थात् पहले जैसी बाकी हो गई।

— पद्य —

परसी पारस भेटिया मिटग्या लोह-विकार ।
तीन बात तो ना मिटी, बांक धार अरु भार ॥
काजल तजै न श्यामता, मोती तजै न श्वेत ।
दुर्जन तजै न दुष्टता, सज्जन तजै न हेत ॥

मन मोती अरु दूध ये, तीनु एक स्वभाव ।
फाट्या पाछे ना मिलै, क्रोडा करो उपाय ॥

– सूक्ति –

कोई भी व्यक्ति अपने स्वभाव के कारण ही अच्छा और बुरा बनता है ।

हम स्वभाव से ही पहचान जाते है कि व्यक्ति कैसा है ? स्वभाव सर्वोपरि होता है, वह छिपाये भी नही छिपता ।

———

३८

गुण

यदि सन्ति गुणा पुंसां, विकसन्त्येव ते स्वयम् ।
नहि कस्तूरिकामोद, शपथेन विभाव्यते ।।

अर्थ—मनुष्यो मे यदि गुण हो तो वे स्वय प्रकट हो जाते है। कस्तूरी की सुगध शपथ से सिद्ध नही होती।

गुणा सर्वत्र पूज्यन्ते, पितृवशो निरर्थक ।
वसुदेव परित्यज्य, वासुदेव नमेज्जन ।।

अर्थ—सब जगह गुणो की पूजा होती है, पितृवश की नही। वसुदेव को छोड कर लोग वासुदेव को नमस्कार करते है।

गुणा कुर्वन्ति दूतत्व दूरेऽपि वसतां सताम् ।
केतकी गन्धमाघ्राय, स्वयगच्छन्ति षट्पदा ।।

अर्थ—सज्जनो के दूर रहने पर भी गुण उनके दूत का काम करते है। केतकी की सुगन्धि को सूघकर, भ्रमर स्वय उनके पास चले जाते है।

दातृत्व प्रिय वक्तृत्व धीरत्वमुचितज्ञता ।
अभ्यासेन न लभ्यन्ते, चत्वार सहजा गुणा ।। 'चाणक्य"

अथ—उदारता, प्रियवक्तृता धीरता और उचितज्ञता अभ्यास से लब्ध नही होते ये चारो सहज गुण है ।

गुणा गुणज्ञेपु गुणा भवन्ति, ते निर्गुण प्राप्य भवन्ति दोपा ।
आस्वाद्यतोया प्रभवन्ति नद्य , समुद्रमासाद्य भवन्त्यपेया ।

अर्थ—गुण गुणज्ञो के पास ही गुण होता है वही निर्गुण को पाकर दोप वन जाता है । नदिया स्वादिप्ट जल वाली होती है, मगर वेही समुद्र मे मिल कर अपेय वन जाती है ।

लब्धु बुद्धि कलापमापदमपाकर्तु विहर्त्त पथि
प्राप्तु कीर्तिमसाधुता विधुनितु धर्म समासेवितुम् ।
रोद्धु पाप विपाकमाकलयितु , स्वर्गापवर्ग श्रिय,
चेत्त्व चित्त ! समीहसे, गुणवता मगतदगी कुरु ।

अर्थ—मन ! यदि तुम बुद्धि कौशल पाने के लिए, आपदाओ को हटाने के लिए, सन्मार्ग पर चलने के लिए, कीर्ति पाने के लिए, असाधुता को दवाने के लिए, धर्म का सेवन करने के लिए, पाप के परिणाम को रोकने के लिए और स्वर्ग मोक्ष की सौख्य श्री को सचय करना चाहते हो तो गुणवानो की सगति करो ।

नागुणी गुणिन वेत्ति गुणी गुणिषु मत्सरी ।
गुणी च गुणरागीच, दुर्लभ सरलोजन ।

अर्थ—गुणहीन गुणी को नही जानता और गुणी गुणियो मे ईर्ष्यालु होता है, गुणी भी एव गुणानुरागी सरल भी, ऐसा जन मिलना दुर्लभ है ।

गुणिनि गुणज्ञोरमते नागुणशीलस्य गुणिनि परितोषः ।
अलिरेति वनात् कमलं न दर्दुरस्त्वेक वासोऽपि ॥

अर्थ—गुणज्ञ ही गुणीजनों से प्रेम करता है गुणहीन का गुणियों में मनोरंजन नहीं होता । वन से आकर भ्रमर कमल को पाता है किन्तु मेंढक एक जगह (पानी) में रहकर भी कमल से सम्पर्क नहीं जोड़ता ।

शरीरस्य गुणानाञ्च, दूरमत्यन्तमन्तरम् ।
शरीरक्षरण विश्वसि, कल्पान्त स्थायिनो गुणा ॥

अर्थ—शरीर और गुण दोनों में महान् अन्तर है । शरीर नाशवान है किन्तु गुण कल्पान्तक रहने वाला है ।

गुणि-गण गणनारम्भे, न पतति कठिनी सुसम्भ्रमाद्यस्य ।
तेनाम्बा यदि सुतिनी, वद ! वन्ध्या की दृशो नाम ।

अर्थ—गुणियों की गणना करते समय, जिसके हेतु कठिनी (खड़िया) नहीं चलती उस पुत्र से यदि माता पुत्रवती कही जाए तो फिर वन्ध्या स्त्री कैसी होगी ?

-पद्य-

गुण के ग्राहक बहुत हैं, बिन गुण लहे न कोय ।
जैसे कागा कोकिला शब्द सुने सब कोय ॥
शब्द सुने सब कोय, कोकिला सबहि सुहाये ।
दोनों का इकरंग, काग किसको है भाये ।
कह गिरधर कविराय, सुनो हो ठाकर मनके ।
बिन गुण लहे न कोय, बहुत नर ग्राहक गुण के ॥

सीरत नहीं जो अच्छी, सूरत फिजूल है ।
जिस गुल में बू नहीं वह कागज का फूल है ।

नाम दियो दया बाई, जुआ लिखां मारे नित,
स्याणी बाई नाम जन्म, गाड मे गमायो है ।
नाम दियो लक्ष्मी बाई, छाडा बीने वन मांहि,
राजीबाई नामराणे, योबडो चढायो है
नाम तो जडाव बाई, पास नही ताबे को तार,
रूपा बाई नाम रूप कागसो सवायो है ।
खूबचन्द कहे इन, दृष्टान्ते सुजान नर,
गुन बिन नाम कछु काम नहिं आयो है ।

— सूक्ति —

जैसे फूल मे सुगध वैसे मनुष्यो मे गुण है ।

जैसे चन्द्रहीन आकाश नही शोभित होता,
वैसे गुणहीन नर भी शोभा नही पाता है ।

यदि उभय लोक मे सुख पाना है तो, गुण को ग्रहण करे ।

———

तीर्थ

तीर्थतेऽनेनेति तीर्थम् ।

अर्थ—जिसके द्वारा तरा जाय, उसे तीर्थ कहते है ।

सत्य तीर्थं क्षमा तीर्थ, तीर्थमिन्द्रियनिग्रह ।
सर्वभूतदया तीर्थ, तीर्थमार्जवमेव च ।।
दान तीर्थ, दमस्तीर्थं, सतोषस्तीर्थमुच्यते ।
ब्रह्मचर्य पर तीर्थं तीर्थ च प्रियवादिता ।।
ज्ञान तीर्थ धृतिस्तीर्थ तपस्तोर्थमुदाहृतम् ।
तीर्थानामपि तत्तीर्थ, विशुद्धिमनस. परा ।।

"स्कन्दपुराण"

अर्थ—सत्य, क्षमा, इन्द्रियनिग्रह, जीवदया, सरलता, दान दम, सतोष, ब्रह्मचर्य, मीठी वाणी, ज्ञान धृति और तप-ये सब तीर्थ हैं, किन्तु मन की विशुद्धि सब तीर्थो मे उत्कृष्ट मानी गई है ।

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसयतम् ।
विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते ।।

"पद्मपुराण पातालखण्ड"

अर्थ—जिसके हाथ, पैर एव मन सयमित है तथा जो विद्या (ज्ञान) तप और कीर्तिमान् है, उसी को तीर्थ का फल मिलता है ।

आत्मा नदी संयम तोयपूर्णा, सत्यावहा शीलतटा दयोर्मि ।
तत्राभिषेकं कुरु पाण्डु पुत्र ! न वारिणा शुद्ध्यति चातरात्मा ॥

अर्थ— संयम जल से भरी हुई आत्मा नदी है, उसमें सत्य का प्रवाह शील के दोनों किनारे और दया भाव उसकी ऊर्मिया है। हे पाडु पुत्र ! उसमें अभिषेक कर ! क्योंकि अन्तरात्मा जल से शुद्ध नहीं होती।

चित्त शमादिभि शुद्ध, वदन सत्यभाषणे ।
ब्रह्मचर्यादिभि काय शुद्धो गगा विनाऽप्यसौ ॥
परदारेष्वनासक्त, परद्रव्यपराड्मुख ।
गगाप्याह कदागत्य, मामय पावयिष्यति ॥

—स्कन्दपुराण, काशीखण्ड

अर्थ—जिसका चित्त शम-दम आदि से, मुख सत्य भाषणों से और शरीर ब्रह्मचर्य आदि से शुद्ध है वह गगा के बिना भी शुद्ध है। गगा कह रही है कि वह महात्मा आकर मुझे कब पवित्र करेगा, जो पर-स्त्री में अनासक्त एव पर धन से विमुख है।

चित्त कामादिभि क्लिष्ट-मलीकवचनैर्मुखम् ।
जीवहिंसादिभि कायो, गङ्गा तस्य पराड्मुखा ॥

— स्कन्दपुराण काशीखण्ड

अर्थ—जिसका चित्त काम आदि से, मुख असत्य वचन से तथा शरीर जीव हिंसा आदि पापो से अशुद्ध है उस व्यक्ति से गगा सदैव विमुख रहती है।

चित्तमन्तर्गत दुष्ट, तीर्थस्नानान्न शुद्ध्यति ।
शतशोऽपि जले धौत, सुराभाण्डमिवाशुचि ॥

—स्कन्दपुराण काशीखण्ड

अर्थ—अन्दर का दुष्ट मन तीर्थ मे नहा लेने मात्र से शुद्ध नही होता। जैसे मद्य का वर्तन सैकडो बार धोने पर भी अपवित्र ही रहता है।

जायन्ते च म्रियन्त च जलेष्वेव जलौकस ।
न च गच्छन्ति ते स्वर्ग-मविशुद्धमनोमला ।।

—स्कन्दपुराण, काशीखण्ड

अर्थ—जोक पानी ही मे जन्मती है और मरती हैं लेकिन मन का मैल धोए विना स्वर्ग मे नही जाती।

सत्य शौच तप शौच, शौचमिद्रिय निग्रह ।
सवभूतदया शौच, जलशौच तु पञ्चमम् ।।

"स्कन्दपुराण, काशीखण्ड"

अर्थ—शौच (शुद्धि) के पाच कारण है। (१) सत्य (२) तप (३) इन्द्रियनिग्रह (४) सब जीवो की दया और (५) जल। प्रथम चार आत्मशुद्धि के कारण है और पाचवा जल शरीर शुद्धि की अपेक्षा से है।

मृत्तोयै शुद्ध्यते शोध्य, नदी वेगेन शुद्ध्यति ।
रजसा स्त्री मनोदुष्टा, सन्यासेन द्विजोत्तम ।।
अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यन्ति, मन मत्येन शुद्ध्यति ।
विद्यातपोभ्या भूतात्मा, वुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति ।।

—मनुस्मृति ५

अर्थ—शोधनीय वस्तु मिट्टी पानी से, नदी वेग मे, दूषित मन वाली स्त्री रजस्वला होने से, ब्राह्मण मन्याम से, शरीर पानी से, मन सत्य से, जीवात्मा विद्या और तप से तथा वुद्धि ज्ञान से शुद्ध होती है।

शुद्ध भूमिगत तोय शुद्धा नारी पतिव्रता ।
शुचि क्षेमकरो राजा, सन्तुष्टो ब्राह्मण शुचि ।।

—चाणक्य नीति

अर्थ—पृथ्वी पर पडा हुआ जल, पतिव्रता स्त्री, कल्याणकारी राजा और सतोषी ब्राह्मण-ये चारो शुद्ध पवित्र माने गये है।

— पद्य —

हरी वेल की कडवी तुम्बडी, सब तीरथ कर आई।
घाट घाट को पानी भरियो, तबहु न गई कडवाई॥

—सूक्ति—

तीर्थ धार्मिक श्रद्धा को स्थिर करने मे परम सहायक कहा गया है।

तीर्थो मे जाकर लोग पश्चात्ताप से अपने पापो को धो डालते है।

सब तीर्थो मे अपना मानस तीर्थ ही श्रेष्ठ है।

किसी भी तीर्थ मे जाये किन्तु जब तक चित्त की शुद्धि नही होगी, फल कुछ भी हाथ नही आयेगा।

४०

परोपकार

अष्टादश पुराणेषु, व्यासस्य वचन द्वयम् ।
परोपकार पुण्याय, पापाय पर पीडनम् ॥

अर्थ—अठारहो पुराण मे, व्यास का दो ही वचन श्लाघनीय है एक परोपकार पुण्य के लिए तथा पर-पीडन पाप के लिए है ।

पिबन्ति नद्य स्वयमेव नाम्भ, स्वय न खादन्ति फलानिवृक्षा ।
नादन्ति सस्य खलु वारिवाहा, परोपकाराय सता विभूतय ।

अर्थ—नदियाँ अपना जल स्वय नही पीती और न वृक्ष ही अपने फल खाते है, मेघ अनाज नही खाते, इससे सिद्ध है कि सज्जनो की विभूति परोपकार के लिए होती है ।

रत्नाकर किं कुरुते स्व रत्नै विन्ध्याचल किं करिभि करोति' ।
श्री खण्डखण्डैर्मलयाचल किं, परोपकाराय सता विभूतय ॥

अर्थ—समुद्र अपने रत्नो से क्या करता है तथा विन्ध्याचल अपने हाथियो से क्या करता और मलयाचल श्री खण्ड के खण्डो से क्या करता अर्थात् स्वय कुछ भी नही करता । सज्जनो की विभूति परोपकार के लिए ही होती है ।

धनानि जीवित चैव, परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत् ।
सन्निमित्ते वर त्यागो, विनाशे नियते सति ।।

अर्थ—विद्वान् को अपना धन और जीवन परोपकार मे त्याग देना चाहिये, क्योकि इन दोनो का विनाश नियत है, फिर अच्छे निमित्त मे इनका त्याग श्रेष्ठ है ।

अधिकार पद प्राप्य, नोपकार करोति य ।
अकारो लुप्तना याति, ककारो द्वित्वता व्रजेत् ।।

अर्थ—अधिकार के पद को पाकर भी जो उपकार नही करता, उसके अधिकार का अकार लुप्त हो जाता और ककार द्वित्व होकर धिक्कार का पद प्राप्त कर लेता है ।

अकृतज्ञा असख्याता , सख्याता कृतवेदिन ।
कृतोपकारिरण स्तोका द्वित्रा स्वेनोपकारिरण ।।

अर्थ—इस ससार मे अकृतज्ञ जन असख्य है और कृतज्ञ भी सख्यात है । कृतके उपकार करने वाले भी थोडे ह और अपनी ओर से उपकारी दो या तीन ही है ।

उपकर्ताधिकारस्थ स्वापराध न मन्यते ।
उपकार ध्वजीकृत्य, सर्वमेवात्र लुम्पति ।।

अर्थ—अधिकार मे रहने वाला उपकारी अपनी ओर से हुए अपराध को नही मानता । वह अपने किए हुए उपकार को ध्वजा बनाकर सब यहा नष्ट कर देता है ।

पद्य

आभूषण नर देह का एक पर उपकार है।
हार को भूषण कहे, उस बुद्धि को धिक्कार है।

जिस गुण की अनुमोदना, करते हे नर नार।
वे गुण आते साथ मे, छाया के अनुसार॥
औरो के कल्याण मे, रहता जिन का ध्यान।
उनका अपने आप ही, हो जाता कल्याण॥

४१

मान

तावदाश्रीयते लक्ष्म्या, तावदस्य स्थिर यश ।
पुरुषस्तावदेवासौ, यावन्मानान्न हीयते ।।

अर्थ—लक्ष्मी तभी तक उस व्यक्ति के पास रहती है, तभी तक उसका यश स्थिर रहता है एव तभी तक उसकी गणना पुरुषो मे होती है, जब तक कि पुरुष का मान नष्ट नही होता ।

"सता माने म्लाने मरणमथवा दूर गमनम् ।"

अर्थ—सज्जनो को मान-म्लान की दशा मे मरना या दूर गमन करना ही श्रेष्ठ है ।

प्रभु प्रसादस्तारुण्य, विभवो रूपमन्वय ।
विद्या शौर्यमित्येतद्, अमद मदकारणम् ।।

अर्थ—प्रभु की प्रसन्नता, जवानी, विभव रूप, वश, विद्या और शूरता ये सब मदहीन मे भी मदोत्पन्न के कारण है ।

अधमाधनमिच्छन्ति, धन मानच मध्यमा ।
उत्तमा मानमिच्छन्ति, मानो हि महता धनम् ।।

अर्थ—अधम पुरुष धन चाहते है और मध्यम धन और मान दोनो, उत्तम जन मान ही चाहते है, क्योकि मान ही महान् पुरुषो का धन है ।

मयाणि एयाणि विगिंचधीरा, न ताणि सेवति सुधीरधम्मा ।
सव्वगोत्तावगया महेसी, उच्च अगोत्त च गइ वयति ।।
"सूत्र कृ०"

अर्थ—साधक को बुद्धि आदि का मद त्याग देना चाहिये । क्योकि ज्ञानी महात्मा इनका सेवन नही करते । अतएव वे सभी गोत्रो से रहित होकर गोत्र रहित परमोच्च मोक्ष को प्राप्त होते है ।

"मान मद्दवया जि ' अर्थात् मान को नम्रता से जीतो ।

दिव्य च्यूतरस पीत्वा, गर्व नो याति कोकिल ।
पीत्वा कर्दम पानीय, भेको टरटरायते ।।

अर्थ—दिव्य आम का रस पीकर भी कोयल गर्व नही करती, लेकिन कीचड मिला जल पीकर मेढक शोर मचाता है ।

विपभार महस्रेण, गर्व नायाति वासुकि ।
वृश्चिको विन्दु मात्रेणा-प्यूर्ध्व वहति कण्टकम् ।।

अर्थ—हजारो रुप के विपभार होने पर भी वासुकि-सर्पराज गर्व नही करता किन्तु विच्छू विन्दु मात्र विप होने पर ही अपना काटा ऊपर उठाये रखता है

— पद्य —

मान सहित विप खाय के, शभु भये जगदीश ।
विना मान अमृत पिये, राहु कटायो शीश

घटने न देना मान, करना मोहमत धन धाम का ।
यदि मान ही जाना रहा, तो धन रहा किस काम का ।।

कचन तजना सहज है, सहज त्रिया का नेह ।
मान बडाई ईर्ष्या, तुलसी दुर्लभ एह ।

गहरी लाली देख के, फूल गुमान भए ।
तो सरिखे इस बाग मे, लग लग सूख गए ।

कबीरा गर्व न कीजिए, नेक न हसिये कोय ।
अजहु नाव समुद्र मे ना जाने क्या होय ॥

— सूक्ति —

आत्मा के लिए किया जाने वाला मान-सम्मान श्रेयस्कर है किन्तु ससारी मान दर्प है, घमड है और सर्वथा त्याज्य है ।

मान की भूख अच्छी किन्तु अभिमान की नही ।

जिसका मान नही, वह जीते हुए भी शव के समान हे ।

मान-दर्प करने वाले का न तो यह लोक हे और न परलोक ।

——

४२

सुख

"अनुकूल वेदनीय सुखम्"

अर्थ—मनोनुकूल होने वाला अनुभव ही सुख है।

जन्म मृत्यु जरा व्याधि, वेदनाभि रुपद्रुतम्।
ससार मिममुत्पन्नमसार त्यजत सुखम्।।

अर्थ—जन्म, मृत्यु, बुढापा, व्याधि और वेदनाओ से उपद्रुत इस असार ससार के छोडने मे ही सुख है।

दु खमेवास्ति न सुख, यस्मात्तदुपलक्ष्यते।
दु खार्तस्य प्रतीकारे, सुख सज्ञा विधीयते।।

अर्थ—जहा तहा दु ख ही देख पडता है, इससे यह ससार दु ख रूप ही है। दु ख मे आर्त के प्रतीकार को ही यहा सुख सज्ञा दी गई है।

— पद्य —

सुख दुख तो ससार मे, सब काहू को होय ।
ज्ञानी भुगते ज्ञान से, मूरख भुगते रोय ।

प्रथम सुख नीरोगी काया । दूजा सुख घर मे माया ॥
तीजा सुख सतवती नारी, चौथा सुख सुत आज्ञाकारी ॥
पचम सुख घर धेनु का वासा । छट्ठा सुख राज मे पासा ॥
सातवा सुख सत्सग का वासा, इनसा रहे आदमी प्यासा ॥

दुःख

आज्ञाभङ्गो नरेन्द्राणा, ब्राह्मणानामनादर ।
पृथक्शय्या च नारीणा–मशस्त्र विहितो वध ।।
—हितोपदेश

अर्थ—आज्ञा भग होने पर राजाओ को अनादर होने पर ब्राह्मणो को, अलग शय्या पर सोने मे स्त्रियो को इतना दु ख होता है, मानो शस्त्र के विना ही किसी ने उनका वध कर दिया हो ।

कुग्रामवास कुलहीन सेवा, कुभोजन क्रोधमुखी च भार्या ।
पुत्रश्च मूर्खो विधवा च कन्या, विनाग्निना षट् प्रदहन्ति कायम् ।।
—चाणक्यनीति

अर्थ—१ कुग्राम का वास २ कुलहीन की सेवा ३ निष्कृष्ट भोजन ४ क्रोध मुखी स्त्री ५ मूर्ख पुत्र ६ विधवा कन्या-ये छहो अग्नि के विना ही शरीर को जलाते है ।

क्षते प्रहारा निपतन्त्यभीक्ष्ण—मन्नक्षये वर्धते जाठराग्नि ।
आपत्सु वैराणि समुद्भवन्ति, छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति ।।
'पचतत्र"

अर्थ—घाव पर वार-वार चोट लगती है, अन्न घटने पर भूख बढ जाती है, तथा आपत्ति के समय नये-नये वैर उत्पन्न हो जाते है, क्योकि दु खो मे बहुलता से नये दु ख आते है ।

पल्लवग्राहि-पाण्डित्य, क्रयक्रीत च मैथुनम् ।
भोजन च पराधीन, तिस्र पुंसा विडम्बना ।।

—हितोपदेश

अर्थ—दो चार बाते याद करके बनाई हुई पण्डिताई, पैसा से खरीदा हुआ [illegible] मैथुन और पराधीन भोजन ये, तीनों पुरुषों के लिए विडम्बना तथा आडम्बर स्वरूप है ।

कस्य दोष कुले नास्ति, व्याधिना को न पीडित ।
व्यसन केन न प्राप्त कस्य सौख्य निरन्तरम् ।।

—चाणक्यनीति

अर्थ—किसके कुल मे दोष नही ! रोग से कौन पीडित नही ! दु,ख किसने नही पाया एव निरन्तर सुख किसको है ?

ईर्ष्या घृणी त्वसतुष्ट क्रोधनो नित्यशङ्कित ।
परभाग्योपजीवी च, पडेते नित्यदु खिता ।।

—हितोपदेश

अर्थ—ईर्ष्यालु, घृणा करने वाला, असन्तोषी, क्रोधी, शकाशील और दूसरो के भाग्य पर जीने वाले-ये छ सदा दु खी ही रहते है ।

अनालोच्य व्यय कर्ता, अनाथ कलह प्रिय ।
आतुर सर्वकार्येषु, नरो दु खैर्नियुज्ते ।।

अर्थ—विचार किए विना खर्च करने वाला, अनाथ, झगडालु और प्रत्येक कार्य मे उतावला यह चार प्रकार का मनुष्य दु खो से सयुक्त होता है ।

राजा वेश्या यमश्चाग्नि-स्तस्करो वाल-याचकौ ।
परदु ख न जानन्ति, ह्यष्टमो ग्रामकण्टक ।।
- चाणक्यनीति

अर्थ—१ राजा, २ वेश्या, ३ यम, ४ अग्नि, ५ चोर, ६ वालक, ७ याचक ८ ग्रामकण्टक-ये आठ दूसरो का दु ख नही जानते ।

— पद्य —

सीयाला मे सी घणो, उन्हाला मैं लू आ ।
चौमासा मे माछर काटे, ए दुख जासी मूआ ।।
दु ख वरावर सुख नही जो थोडा दिन होय ।
इष्ट मित्र अरु प्रिय स्वजन, जानि परत सव कोय ।।
तुलसी साथी विपद मे विद्या-विनय-विवेक ।
साहस-सुकृत-सत्यव्रत, राम भरोसो एक ।।
छोटे से दुख दूर है, वडो को दुख पूर ।
तारा तो न्यारा रहे, ग्रहे चद और सूर ।।
पहलो दु ख हाथ साकडो, दूजो दु ख वैरी वाकडो ।
तीजो दु ख पडौसी चोर, चौथो दु ख घर मे वडवोर ।।
पाचवो दु ख कन्या कु वारी, छट्ठो दु ख पुत्र जुआरी ।
सातवो दु ख परायो जोखो, आठमो दु ख हाथ मे होको ।।
—राजस्थानी कहावत

४४

आचार

आचार कुलमाख्याति, वपुराख्याति भोजनम् ।
सभ्रम स्नेहमाख्याति, देशमाख्याति भाषणम् ।

अर्थ—आचार कुल का कथन करता है और शरीर भोजन का आदर स्नेह का भाषण देश का परिचय देता है ।

आचार प्राणिना पूज्यो, न रूप न च यौवनम् ।
वेश्या रूपवती निन्द्या, वद्या मासोपवासिनी ।।

अर्थ—प्राणियो (मानवो) के लिए आचार-आचरण ही पूज्य है, रूप और यौवन नही । रूपवती वेश्या निन्दा पाती है और मासोपवास करने वाली वन्द्या-पूज्या होती है ।

क्रियेव फलदा पुंसा, न ज्ञान फलद मतम् ।
यत स्त्री-भक्ष्य-भोगज्ञो, न ज्ञानात् सुखभाग्भवेत् ।

अर्थ—वास्तव मे क्रिया ही फल देने वाली है, मात्र ज्ञान नही । क्योकि स्त्री और भोजन के सुख को भोगने वाला ही जानता है, केवल इसके ज्ञान मात्र से सुखी नही होता ।

शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खा, यस्तुक्रियावान् पुरुष स विद्वान् ।
सुचिन्तित चौपधमातुराणा, न नाम मात्रेण करोत्यरोगम् ।।

अर्थ—शास्त्रो को पढकर भी लोग मूर्ख होते है, जो क्रिया करने वाले है, वही विद्वान् है । भली भाँति विचार कर दिया गया औषध ही रोगो के लिए ठीक होता है, औषध के नाम लेने भर से रोग कभी दूर नही होता ।

स पुमान् पटावृतोऽपि नग्न एव, यस्य नास्ति सच्चारित्रमावरणम् ।
स नग्नोऽप्यनग्न एव, यो भूषित सच्चारित्रेण ।।

अर्थ—वह सुन्दर वस्त्रो से वेष्टित होकर भी नग्न ही है, जिसको कि सदाचार का आवरण नही है । और वह नग्न होने पर भी नग्न नही है जो कि सदाचार से भूषित है ।

कुलीनमकुलीन वा, वीर पुरुष मानिनम् ।
चारित्रमेव व्याख्याति, शुचि वा यदि वाशुचिम् ।।
— वाल्मीकि रामा०"

अर्थ—मनुष्य के आचार से ही पता चलता है कि वह कुलीन है या कुलहीन चरित्र ही वतलाता है कि वह वीर या मानी तथा पवित्र या अपवित्र है ।

तत्वरुचि सम्यक्त्व, तत्त्व प्रख्यापक भवेज्ज्ञानम् ।
पाप क्रिया निवृत्ति-श्चारित्रमुक्त जिनेन्द्रेण ।।

अर्थ—जिनेन्द्र ने तत्व विषयक रुचि को सम्यग्दर्शन, तत्व विषयक ज्ञान को सम्यग्ज्ञान और पापमय क्रिया से निवृत्ति को सम्यक् चरित्र कहा है ।

सुबहुंपिसुयनहीय, किं काही चरण विप्पहीणस्स ।
अन्धस्स जहा पलिता दीवसयसहस्स-कोडीवि ।।

अर्थ—आचार हीन को अत्यधिक शास्त्र का अध्ययन भी क्या लाभ दे सकता है। क्या लाखो दीपक का जलना अंधे को दीखने मे सहायक हो सकता है।

वृत्त यत्नेन संरक्षेद्, वित्तमायाति याति च ।
अक्षीणो वित्तत क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हत ।।

—"विदुरनीति"

अर्थ—यत्न पूर्वक चरित्र की रक्षा करो, धन तो आता है और चला जाता है। धन हीन व्यक्ति वस्तुत क्षीण नहीं किन्तु जो चरित्र मे क्षीण हो गया, वह सचमुच मर ही गया।

प्रत्यह प्रत्यवेक्षेत, नरश्चरितमात्मन ।
"किं नु मे पशुभिस्तुल्य, किं नु सत्पुरुषैरिति ।।

—"शार्ङ्गधर"

अर्थ—मनुष्य को प्रतिदिन अपना आचरण देखना चाहिये और विचारना चाहिये कि मेरा आचरण कितना पशु सदृश है और सत्पुरुषो के तुल्य कितना है ?

आचार विचारो का द्योतक, चाहे वह कुछ भी कहे नही ।
घन-पटल-बीच ढक कर भी रवि, चलने से पीछे रहे नही ॥

— सूक्ति —

अगर आपका आचार ऊचा है तो ससार आपके चरणो मे झुके बिना नही रहेगा ।

महानता विषयक सभी समस्याओ का समाधान व्यक्ति का अपना आचरण ही है ।

आपका आचार ऊचा है तो विचार ऊचा होगा ही ।

———

४५

काम भोग

कामेन विजितो ब्रह्मा, कामेन विजितो हरि ।
कामेन विजित शम्भु, शक्र कामेन निर्जित ।।

अर्थ—काम ने ब्रह्मा, विष्णु, शिव और इन्द्र सब को जीत लिया ।

तावन्महत्त्व पाण्डित्य, कुलीनत्व विवेकिता ।
यावज्जलति नाङ्गेषु, हन्त ! पञ्चेषुपावक ।।

अर्थ—बडप्पन कुलीनता, पण्डिताई और विवेक—ये सब तभी तक हैं, जब तक कि शरीर मे कामाग्नि नही जलती ।

न जातु काम कामाना-मुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव, भूयएवाभिवर्धते ।।

—"मनुस्मृति"

अर्थ—काम सम्बन्धी उपभोग से काम शान्त नही होता प्रत्युत घृत से अग्नि की तरह वह और ज्यादा बढता है ।

सकल्पाज्जायते काम सेव्यमानो विवर्धते । "महाभारत"

अर्थ—काम विकार सकल्प से उत्पन्न होता है और सेवन से बढता है ।

उपनिषद परिपीता, गीतापि च हृत ! मतिपथ नीता ।
तदपि न हा ! विधुवदना, मानस सदनाद् वहिर्याति ।।

अर्थ—उपनिषदो का पान किया और गीता को भी अच्छी तरह से जान लिया । फिर भी खेद है कि चन्द्रमुखी मेरे मन रूप घर से दूर नही जाती है ।

खरणमेत्तसोक्खा बहुकालदुक्खा पगामदुक्खा अरिणगाम सोक्खा ।
ससार मोक्खस्स विपक्खभूया, खाणी अणत्थाण उकामभोगा ।।

अर्थ—काम भोग क्षणिक सुख तो बहुत समय तक दु ख देने वाले है । ये ससार-मुक्ति के विरोधी तथा अनर्थो की खान है ।

सल्ल कामा विसकामा, कामाआसी विसोवमा ।
कामे पत्थेमाणा, अकामा जन्ति दोग्गइ ।।

अर्थ—काम भोग शल्य हे विप है और आशीविप सर्प के समान है । काम भोग को चाहने वाले, विना सेवन के भी दुर्गति को प्राप्त होते है ।

दिवा पश्यति नो धूक , काको नक्त न पश्यति ।
अपूर्व कोऽपि कामान्ध , दिवा नक्त न पश्यति ।।

अर्थ—उल्लू दिन मे नही देखता और कौआ रात को नही, मगर कामान्ध तो वह अपूर्व व्यक्ति है जो दिन और रात दोनो मे नही देखता ।

तरण कट्ठेहि व अग्गी, लवरण जलो वा नईसहस्सेही ।
नइमो जीवो सक्को, तिप्पेउ काम भोगेहि ।।

अर्थ—तृण एव लकडियो से अग्नि सतुष्ट नही होती, हजारो नदियो से लवण समुद्र सतुष्ट नही होता । वैसे काम भोगो से भी जीव की तृप्ति नही होती ।

४६

नारी

समोहयन्ति मदयन्ति विडम्बयन्ति, निर्भर्त्संयान्तिरमयति विषादयन्ति ।
एता प्रविश्य सदय हृदय नराणा, कि नामवामनयना न समाचरन्ति ।

अर्थ—भली भाति मोहित करती है, मदोन्मत्त बनाती है, विडम्बित और अपमानित करती है, उसके साथ क्रीडा करती तथा विषण्ण बनाती है, इस तरह स्त्रिया सुहृदय-पुरुषो के मन मे प्रवेश कर क्या-क्या कर्म नही करती ?

शम्बरस्य चयामाया, या माया नमुचेरपि ।
बले कुम्भीनसस्यैव, सर्वास्ता योषितो विदु ॥

अर्थ—शम्बर की, नमुचि की, बलि एव कुम्भीनस की समस्त माया नारिया जानती है ।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते, सर्वास्तत्राफला क्रिया ॥

अर्थ—जिस घर मे स्त्रियो का सम्मान होता है, वहा देवता रमण करते है । और जहा उनका सम्मान नही होता, वहा की समस्त क्रियाए निष्फल होती हैं ।

दर्शनाद्धरते चित्त, स्पर्शनाद् ग्रसते बलम् ।
सगमाद् ग्रसते वीर्य, नारी प्रत्यक्ष राक्षसी ।।

अर्थ—दर्शन मात्र से चित्त हरती है और स्पर्श करने से बल, सगम से वीर्य इस तरह नारी प्रत्यक्ष राक्षसी है ।

जहा नई वेतरणी, दुत्तरा इह समया ।
एव लोगमि नारीओ दुत्तरा य नई मया ।।

—"सूत्र कृताग"

अर्थ—जैसे वैतरणी नदी को पार करना मुश्किल है, ऐसे ससार मे नारी रूप नदी भी दुस्तर है ।

अनृत साहस माया, मूर्खत्वमतिलोभता ।
अशौचत्व निर्दयत्व स्त्रीणा दोषा स्वभावजा ।।

अर्थ—झूठ, साहस, माया, मूर्खता, अतिलोभता, अशुचि और निर्दयता ये स्त्रियो के स्वाभाविक दोष है ।

स्त्रीणा द्विगुणमाहारो, लज्जा चापि चतुर्गुणा ।
साहस षड्गुण प्रोक्त, कामश्चाष्ट गुण स्मृत ।।

—"चाणक्यनीति"

अर्थ—पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियो का भोजन दुगुना, लज्जा चार गुनी, साहस छ गुना और काम आठ गुना माना गया है ।

भग्न भण्डे यथा नीर, क्षीर श्वानोदरे यथा ।
गुह्यवार्ता तथा स्त्रीणा, चिरकाले न तिष्ठति ।।

अर्थ—फूटे वर्तन मे जैसे जल, कुत्ते के पेट मे दूध वैसे ही स्त्रियो के हृदय मे गूढ बात अधिक समय तक नही ठहरती ।

यदिस्याच्छीतलो वह्नि-श्चन्द्रमा दहनात्मक। ।
सुस्वाद सागर स्त्रीणा तत्सतीत्व प्रजायते ।।

—"पचतन्त्र"

अर्थ—अगर अग्नि शीतल हो जाय तथा चन्द्रमा गर्म स्वभाव का हो जाय तथा समुद्र का जल मीठा हो जाय तब कही स्त्रियो मे सतीत्व हो सकता है, अन्यथा नही ।

— पद्य —

विजली से वनिता कही, अधिक शक्ति का पात्र ।
उसका स्पर्शन खीचता, इसका दर्शन मात्रा ।।   "चन्दनमुनि"
तीतर-वरणी वादली, विधवा काली रेख ।
वा वरसै वा घर करै, इसमे मीन न मेख ।।   "राजस्थानी"
प्रमदा मदिरा इन्दिरा, त्रिविधा सुरा समान ।
देखत पीवत सग्रहत, करत प्रमत्त जहान ।।
तिरिया मे गुणतीन है, अवगुण भर्या अनेक ।
मगल गावे सुत जणै, रोट्या देवे सेक ।।   राजस्थानी
अवला जीवन ! हाय ! तुम्हारी यही कहानी ।
आचल मे है दूध, और आखो मे पानी ।।   मैथिली शरण गुप्त'

—सूक्ति—

नारी ही सृष्टि का शृ गार और सौख्य का भण्डार है।
रामायण और महाभारत के सर्वनाश का मुख्य पात्र नारी ही तो है ।
नारी चाहे तो पल मे प्रलय और क्षण मे स्वर्ग वसा सकती है ।
नारी की महिमा के आगे घुटने न टेकने वालो की सख्या अ गुलियो पर गिनी जा सकती है ।

———

यदिस्याच्छीतलो वह्नि-श्चन्द्रमा दहनात्मकः ।
सुस्वाद सागर स्त्रीणां तत्सतीत्व प्रजायते ।।
—"पञ्चतन्त्र"

अर्थ—अगर अग्नि शीतल हो जाय तथा चन्द्रमा गर्म स्वभाव का हो जाय तथा समुद्र का जल मीठा हो जाय तब कहीं स्त्रियों में सतीत्व हो सकता है, अन्यथा नहीं ।

— पद्य —

बिजली से वनिता कही, अधिक शक्ति का पात्र ।
उसका स्पर्शन खींचता, इसका दर्शन मात्र ।। "चन्दनमुनि"
तीतर-वरणी बादली, विधवा काली रेख ।
वा वरसै वा घर करै, इसमे मीन न मेख ।। "राजस्थानी"
प्रमदा मदिरा इन्दिरा, त्रिविधा सुरा समान ।
देखत पीवत सग्रहत, करत प्रमत्त जहान ।।
तिरिया मे गुणतीन है अवगुण भर्या अनेक ।
मगल गावे सुत जणै, रोट्या देवे सेक ।। राजस्थानी
अबला जीवन ! हाय ! तुम्हारी यही कहानी ।
आचल मे है दूध, और आखो मे पानी ।। मैथिली शरण गुप्त'

—सूक्ति—

नारी ही सृष्टि का शृंगार और सौख्य का भण्डार है ।
रामायण और महाभारत के सर्वनाश का मुख्य पात्र नारी ही तो है ।
नारी चाहे तो पल मे प्रलय और क्षण मे स्वर्ग बसा सकती है ।
नारी की महिमा के आगे घुटने न टेकने वालो की सख्या अंगुलियों पर गिनी जा सकती है ।

———

न किंचिद्दीर्घसूत्राणा, सिद्ध्यत्यात्मक्षयादृते ।

अर्थ—ढीले एव सुस्त मनुष्यों का उनके नाश के सिवा कोई कार्य सिद्ध नही होता ।

पमाय कम्ममाहसु, अप्पमाय तहावर ।
तब्भावादेसओ वावि, वाल पडियमेववा ।।

—'सूत्रकृताग"

अर्थ—भगवान् ने प्रमाद को कर्मबन्ध करने वाला एव अप्रमाद को कर्मबन्ध रहित कहा है । प्रमाद होने और नही होने से ही मनुष्य क्रमश वाल एव पण्डित कहलाता है ।

—उर्दू शेर—

न कर उम्र की इक भी जाया घडी,
के टूटी लडी जब की छूटी कडी ।
गयी एक पल भी जो गफलत मे छूट,
तो माला गयी साठ हीरो की टूट ।।

जिसने पहचानी न कोई कद्र अपने वक्त की ।
कामयाबी उसको हासिल, हो नही सकती कभी ।। दाग

जब खजाना लूट गया, तब होश मे आये तो क्या ।
वक्त खोकर दस्ते हसरत, मल के पछताये तो क्या ।। हाली

ऐ वक्त वक्त प्यारे ! पछता रहे हैं खोकर ।
मुमकीन नही है अब तो मरकर भी हो मुयस्सर ।।

वैराग्य

भोगे रोग भय, कुले च्युति भय, वित्ते नृपालाद् भय,
मौने दैन्य भय वले रिपुभय रूपे जराया भयम् ।
शास्त्रे वादभय, गुणेखल भय, काये कृतान्ताद् भय,
सर्व वस्तु भयान्वित भुवि नृणा वैराग्यमेवाभयम् ।।

अर्थ—भोगी को रोग का, कुलीन को पतन का, धनी को राजा का, मौन मे दीनता का, वल मे शत्रु का, रूप मे बुढापा का, शास्त्र ज्ञान मे वाद-विवाद का, गुण मे दुर्जन का और शरीर धारण मे मृत्यु का भय है। इस तरह सभी वस्तुए भय से युक्त है, केवल पृथ्वी पर मनुष्यो के वास्ते वैराग्य अभय वाला है।

काय सनिहितापाय, सपद पदमापदाम् ।
समागमा सापगमा, सर्वमुत्पादि भङ्गुरम् ।।

अर्थ—शरीर विघ्न से युक्त है, सम्पत्ति आपत्ति का स्थान है, मिलन वियोग से युक्त है इस तरह यहा सभी उत्पन्न होने वाला नाशवान् हैं।

वनेऽपि दोषा प्रभवन्ति रागिणा, गृहेऽपि पञ्चेन्द्रिय निग्रहस्तप ।
अकुत्सिते कर्मणि य प्रवर्तते, निवृत्त रागस्य गृह तपोवनम् ।।

अर्थ—रागियो को वन मे भी दोष लग जाते है और वैरागियो को घर मे भी पाच इन्द्रियो के निग्रह रूप तप प्राप्त हो जाता है। जो अच्छे कार्यो मे प्रवृत्ति करते है, उन वैरागियो के लिए घर ही तपोवन है।

देहेऽस्थि मासरुधिरेऽभिमतिस्त्यज त्वं,
जाया सुतादिषु सदा ममता विमुञ्च ।
पश्यानिश जगदिद क्षणभङ्ग नष्ट,
वैराग्य राग रसिको भवभक्तिनिष्ठ, ।।

—श्रीमद् भागवत माहात्म्य

अर्थ—ऐ भक्तिनिष्ठ जीव ! हड्डी मास और शोणित से भरे हुए इस शरीर का अभिमान छोड, स्त्री पुत्र आदि मे सदा रहने वाली ममता का त्याग कर, क्षण मे भग और नष्ट होने वाले इस जगत् को देख और वैराग्य राग का रसिक बन ।

भक्तिर्भवे मरण जन्म भय हृदिस्थ,
स्नेहोन बन्धुषु न मन्मथजा विकारा ।
ससर्ग दोष रहिता विजना वनान्ता,
वैराग्यमस्ति किमत परमर्थनीयम् ।

अर्थ—भगवान् मे भक्ति, हृदय मे जन्म मरण का भय, बन्धुओ मे स्नेह का अभाव, और काम विकार का न होना तथा ससर्ग दोष से रहित निर्जन वन मे निवास हो जाय तो इससे बढ कर और वैराग्य क्या है, जो प्रभु से मागा जाय ।

वासनाऽनुदये भोग्ये, वैराग्यस्य परोऽवधि ।

अर्थ—भोग्य वस्तुओ के प्रति वासना का उदय न होना वैराग्य की परम सीमा है ।

विचार्य खलु पश्यामि, तत्सुख यत्र निर्वृति ।

अर्थ—विचार कर देखता हूँ तो ज्ञात होता है कि जहा वैराग्य है, वही पर सुख है ।

—सूक्ति—

राग पैदा करने वाले पदार्थों पर से जिसने राग हटा लिया, उसके लिये कुछ भी असम्भव नही है।

ससार से मुह मोड लेना, कोई सहज सरल नही है।

ससार के भोग सुखो को ठुकराने वाले अपवर्ग सुख को पाते है।

क्रोध प्राणहर शत्रु, क्रोधो मित्र मुखो रिपु ।
क्रोधोह्यसिर्महा तीक्ष्ण, सर्वं क्रोधोऽपकर्षति ।।

— 'वाल्मीकि रा'

अर्थ—क्रोध प्राण को हरने वाला, मित्र के रूप मे शत्रु है, क्रोध अर तेज तलवार है तथा सबकी अवनति करने वाला है।

कोहेण अप्पडहति पर च अत्थ च धम्म च तहेव काम
तिव्वपि वेर य करेति कोधा, अधर गति वावि उविति कोहा ।।

अथ—क्रोध से आत्मा अपने तथा दूसरे दोनो को जलाता है अर्थ-धर्म-काम को जलाता है, तीव्र वैर भी करता है और नीच गति को प्राप्त करता है।

हरत्येक दिनेनैव, ज्वर षाण्मासिक बलम् ।
क्रोधेन तु क्षणेनैव कोटि पूर्वार्जित तप ।।

अर्थ—एक दिन का ज्वर छ मास का बल हरण कर लेता है किन्तु क्षण-भर का ही क्रोध करोडो पूर्व के तप को विनष्ट कर देता है।

'कोहो पीइं पणासेइ''

अर्थ—क्रोध प्रेम का नाश करता है।

पैशुन्य साहस द्रोह-मीर्ष्याऽसूयार्थ दूषणम्।
वाग्दण्डज च पारुष्य, क्रोधजोऽपि गणोऽष्टक।

अर्थ—चुगलखोरी, साहस, द्रोह, ईर्ष्या, दूसरे के गुण मे दोष देखना, अयोग्य धन ग्रहण, कठोर वचन और क्रूरता का व्यवहार ये आठ दोष क्रोध से उत्पन्न होते हैं।

देवता सुगुरौ गोपु, राजसु ब्राह्मणेपु च।
नियन्तव्य सदा कोपो, बाल-वृद्धातुरेपु च।।

अर्थ—देवता, सुगुरु, गाय, राजा, ब्राह्मण, बालक, वृद्ध और रोगी पर सदा आये क्रोध को रोक लेना चाहिये।

वाच्यावाच्य प्रकुपितो, न विजानाति कर्हिचित्।
नाकार्यमस्ति क्रुद्धस्य, नावाच्य विद्यते क्वचित्।।

—वाल्मीकि

— सूक्ति —

क्रोध की ज्वाला अग्नि की ज्वाला से भी बढकर होती है।

आग अधिक से अधिक, घर, मुहल्ला और गाव को ही जला सकती है किन्तु क्रोध से तो सारा राष्ट्र और विश्व तक जल सकता है।

एक क्रोध को वश मे करने से दूसरे अन्य दोष स्वत वश मे हो सकते है।

क्रोध चण्डाल ही नही उससे भी बहुत बुरा है।

संयम

जहा अग्गिसिहा दित्ता पाउ होइ सुदुक्करा ।
तहा दुक्कर करेउ जे, तारुण्णे समणत्तण ।।

अर्थ—जैसे दीप्त अग्नि शिखा का पीना अत्यन्त कठिन है वैसे ही तरुणाई मे सयम पालना भी वहुत कठिन है ।

वालुया कवले चेव, निनस्साए उ सजमे ।
असिधारा गमण चेव, दुक्कर चरिउ तवो ।।

"उत्तराध्ययन"

अर्थ—वालु-रेत के कवल के समान सयम स्वादरहित है तथा तलवार की धार पर चलने के समान यह दुष्कर है ।

सयमो हि महामन्त्र-स्त्राता सर्वत्र देहिनाम् ।

अर्थ—देहधारियो के लिए सर्वत्र रक्षा करने वाला महामन्त्र एक सयम ही है ।

लोगस्स सार धम्मो, धम्म पि यनाण सारिय बिति ।
नाण सजम सार सजमसार च निव्वाण ।।

अर्थ—लोक का सार धर्म है, धर्म का सार ज्ञान है, ज्ञान का सार सयम है और सयम का सार मोक्ष ।

अपवित्र पवित्र स्याद्, दासो विश्वेशता भजेन् ।
मूर्खो लभेन् ज्ञानानि, मङ्क्षु दीक्षा प्रसादत ॥

अर्थ—दीक्षा-सयम क प्रभाव से अपवित्र व्यक्ति पवित्र बन जाता । सेवक विश्व का स्वामी हो जाता और मूर्ख ज्ञानो को प्राप्त करता है ।

सजमहेउ देहो धारिज्जइ सो कओ उ तदभावे ।
सजम फाइ निमित्त, देह परिपालणा इट्ठा ॥

"ओघनिर्युक्ति"

अर्थ – शरीर सयम के लिए ही धारण किया जाता है । क्योकि शरीर के अभाव मे सयम नही रह सकता । अत सयम बढाने के लिए ही शरीर का पालन इष्ट है ।

पद्य

साधु-मारग साकडा जैसा पिंड खजूर ।
चढ़े तो चाखे प्रेम रस, पडे तो चकनाचूर ॥

सयम-साधन सरल ना, अति दुस्तर-व्यवहार ।
करके भी बहुश ग्रहण, विरला पावे पार ॥

विन सयम मिलता नही, कभी मोक्ष का द्वार ।
सयम बिन कोई जतन, करत न बेडा पार ॥

लेना सयम सहज है, पालन अति दुश्वार ।
खुले पाव से जोर दे चलना असि क धार ॥

जीवन का क्या है पता, कब तक है कब जाय ।
मुक्ति नगर पाथेय हित-सयम सुखद उपाय ।

आपत्काले तु सप्राप्ते, यन्मित्र मित्रमेवतन् ।
वृद्धि काले तु मप्राप्ते, दुर्जनोऽपि सुहृद्‌भवेत् ॥

अथ—विपदा की घडी मे जो मित्र है, वस्तुत मच्चा मित्र वही है। सुख
समृद्धि के समय मे दुर्जन भी मित्र वन जाता है।

व्याधितस्यार्थ हीनस्य, देशान्तर गतस्य च ।
नरस्य शोकदग्धस्य, सुहृद्दर्शनमौपधम् ॥

अर्थ—रोगी के, धनहीन के तथा देशान्तर गए हुए के एव शोक सतप्त नरके
मित्र का दिखाई देना औपध का काम करता है।

पापान्निवारयति योजयते हिताय,
गुह्य निगूहतिगुणान् प्रकटीकरोति ।
आपद्‌गत च न जहाति ददाति काले,
सन्मित्र लक्षणमिद प्रवदन्ति सत ॥

अथ—पाप से हटाता है, हित के काम मे लगाता है, छिपाने योग्य वातो
को छिपाता है, गुण को प्रकट करता ह। आपत्ति काल मे साथ नही
छोडता, समय पर देता है, सन्तजन, सच्चे मित्र के ये लक्षण
वताते है।

मित्रवान् साधयत्यर्थान्, दु साध्यानपि वैयत ।
तस्माद् मित्राणि कुर्वीत, समानान्येव चात्मन ॥

अर्थ—मित्र वाला दु साध्य प्रयोजन को भी साध लेता है, इसलिए नर को
चाहिये कि वह समान भाव वाले को मित्र बनावे।

योऽमित्र कुरुते मित्र, वीर्याभ्यधिकमात्मत ।
स करोति न सन्देह स्वय हि विषभक्षणम् ॥

"पचतन्त्र"

अर्थ—जो अपने से अधिक बलशाली व्यक्ति को मित्र बनाता है, वह निस्सन्देह स्वय विष भक्षण करता है।

अप्रियाण्यपि पथ्यानि, ये वदन्ति नृणामिह ।
त एव सुहृद प्रोक्ता, अन्ये स्युर्नामधारका ॥

अर्थ—जो मनुष्य यहा हित की अप्रिय बात कह देता है वे ही मित्र कहे गए है, दूसरे तो मित्र नामधारी है, वस्तुत मित्र नही है।

पद्य

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी, तिन्हहि बिलोकत पातक भारी।
निज दुख गिरि समरज करिजाना, मित्र का दुखरज मेरु समाना ॥
'रामचरित मानस'

मिसरी घोले झूठ की, ऐसे मित्र हजार।
जहर पिलावे साच का, वे विरले ससार ॥

आए को आदर नही, चलत न पूछै बात।
तुलसी ऐसे मित्र के, सिर पर डारो खात ॥

मुख मीठा सज्जण घणा, मिजलस मित्र अने
काम पड्या कायम रहे, सो लाखन मे'

— सूक्ति —

मैत्री का विस्तार प्राय उपकारक ही होता है ।

मित्र हजारो बनें मगर शत्रु एक भी नही ।

सच्चा मित्र प्रिय बन्धुजनो से भी बढकर होता है ।

ससार मे जिसका कोई भी दोस्त नही, वह वस्तुत भाग्य हीन है ।

अपनी ओर से मित्रता मे कोई कमी नही आने दे । परिणाम अच्छा ही रहेगा ।

—

— सूक्ति —

मैत्री का विस्तार प्राय उपकारक ही होता है।

मित्र हजारो बनें मगर शत्रु एक भी नही।

सच्चा मित्र प्रिय बन्धुजनो से भी बढकर होता है।

ससार मे जिसका कोई भी दोस्त नही, वह वस्तुत भाग्य हीन है।

अपनी ओर से मित्रता मे कोई कमी नही आने दे। परिणाम अच्छा ही रहेगा।